व्यावसायिक अध्ययन

कक्षा XII

(सेट-II)

निर्धारित समय : 3 घण्टे *पूर्णांक : 100*

सामान्य निर्देश—

(i) 1 अंकों वाले प्रश्नों के उत्तर एक शब्द से एक वाक्य तक हों।

(ii) 3 अंकों वाले प्रश्नों के उत्तर 50-75 शब्दों के हों।

(iii) 4-5 अंकों वाले प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों के हों।

(iv) 6 अंकों वाले प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों के हों।

(v) एक प्रश्न के सभी भाग साथ-साथ ही हल कीजिए।

1. नियोजन प्रक्रिया क्या है ? 1

(What is planning process ?)

उत्तर—नियोजन प्रबन्ध का वह कार्य है जिसमें लक्ष्यों का निर्धारण करना तथा उन्हें करने हेतु की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं को शामिल किया जाता है। इसके अन्तर्गत यह निश्चित किया जाता है कि क्या करना है? कब करना है? कब किया जाना है तथा किसके द्वारा किया जाना है? इन सभी प्रश्नों के बारे में निर्णय लेना ही नियोजन कहलाता है।

2. व्यावसायिक पर्यावरण का अर्थ बताइये। 1

(State the meaning of business environment.)

उत्तर—व्यावसायिक वातावरण का अभिप्राय उन घटकों के योग से है जो व्यवसाय को प्रभावित करते हैं और जिन पर कम-से-कम अल्पकाल में व्यवसाय का कोई नियन्त्रण नहीं होता।

3. सुरक्षा अधिकार क्या है ? 1

(What is meant by protection right ?)

उत्तर—यह ऐसी वस्तुओं और सेवाओं से सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार है जिनसे उपभोक्ता के स्वास्थ्य, जीवन व सम्पत्ति की हानि हो सकती है। उदाहरण के लिए नकली अथवा घटिया किस्म की दवाइयाँ उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य को हानि पहुँचा सकती हैं। उपभोक्ताओं को इस प्रकार की क्षति के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार होता है।

4. मुद्रा बाजार से क्या आशय है ? 1

(What is meant by money market ?)

उत्तर—मुद्रा बाजार से आशय ऐसे बाजार से है जो अल्पकालीन कोषों में व्यवहार करता है। इसके अन्तर्गत उन सभी व्यक्तियों, संस्थाओं एवं संगठनों को शामिल किया जाता है जो अल्पकालीन कोषों का प्रबन्ध एवं उपयोग करते हैं।

5. उत्पाद मिश्रण से क्या आशय है ? 1

(What is meant by product mix ?)

उत्तर—यह विपणन मिश्रण का प्रमुख तत्व/अंग/चल है। इसके अन्तर्गत उत्पाद के रंग, रूप, आकार, डिजाइन, रेखा (पंक्ति), समूह आदि के बारे में निर्णय लिये जाते हैं। इन्हीं उत्पाद को मिश्रण कहते हैं।

6. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत उपभोक्ता से क्या आशय है ? 1

(What is meant by consumer under the consumer protection Act, 1986 ?)

उत्तर—उपभोक्ता संरक्षण अधिनिमय, 1986 के अन्तर्गत उपभोक्ता को निम्न दो भागों में विभक्त किया गया है--

(अ) माल का उपभोक्ता (Consumer of Goods)—माल के उपभोक्ता से आशय ऐसे व्यक्ति से है जिसने प्रतिफल के बदले किसी माल (Goods) को खरीदा हो एवं उसके मूल्य का भुगतान कर दिया हो।

Scanned with CamScanner

(ब) **सेवा का उपभोक्ता** (Consumer of Services)—ऐसा उपभोक्ता जो प्रतिफल के बदले किन्हीं ऐसी सेवाओं को किराये पर लेता है जिनका भुगतान कर दिया हो।

7. पूँजी बाजार क्या है ? 1

(What is capital market ?)

उत्तर—ऐसा बाजार जिसमें दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में व्यवहार किया जाता है उसे पूँजी बाजार कहते हैं। पूँजी बाजार (capital market) में व्यवहार की जाने वाली प्रतिभूतियों का अभिप्राय अंशों, ऋणपत्रों, सरकारी बाण्ड आदि से है।

8. प्रबन्ध के तीन स्तर कौन-कौन से हैं ? 1

(What are the three levels of management ?)

उत्तर—प्रबन्ध के तीन स्तर होते हैं—

(i) उच्च स्तरीय प्रबन्ध, (ii) मध्य स्तरीय प्रबन्ध, (iii) निम्न स्तरीय प्रबन्ध।

9. निर्देशन की परिभाषा एवं अर्थ बताइए। 1

(What is the meaning of staffing ?)

उत्तर—निर्देशन के अन्तर्गत उन प्रक्रियाओं व तकनीकों का समावेश किया जाता है जिनका उपयोग आदेशों एवं निर्देशों को निर्गमित करने एवं यह देखने के लिए किया जाता है कि उपक्रम की सभी क्रियाएँ योजना अनुसार पूरी हो रही हैं या नहीं।

10. फेयोल के प्रबन्ध के किन्हीं चार सिद्धान्तों के नाम बताइए। 1

(Name any four principles of management of Fayol.)

उत्तर—फेयोल के प्रबन्ध के चार सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(1) कार्य-विभाजन का सिद्धान्त,

(2) अधिकार तथा उत्तरदायित्व का सिद्धान्त,

(3) अनुशासन का सिद्धान्त,

(4) आदेश की एकात्मकता का सिद्धान्त।

11. औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन में कोई तीन अन्तर बताइए। 3

(Give any three differences between formal and informal organisation.)

उत्तर—औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन में निम्नलिखित अन्तर हैं—

क्र. सं. (S. No.)	अन्तर का आधार (Basis of Difference)	औपचारिक संगठन (Formal Organisation)	अनौपचारिक संगठन (Informal Organisation)
1.	उत्पत्ति (Origin)	इसकी उत्पत्ति अधिकारों के प्रत्यायोजन द्वारा होती है।	इसकी उत्पत्ति स्वत: पारस्परिक सामाजिक सम्बन्धों के कारण होती है।
2.	उद्देश्य (Objectives)	ये संगठन तकनीकी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाये जाते हैं।	ये संगठन सामाजिक सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए बनाये जाते हैं।
3.	आकार (Size)	औपचारिक संगठनों का आकार बहुत बड़ा होता है।	ऐसे संगठनों का आकार प्राय: छोटा ही रहता है।

12. प्रशिक्षण क्या है ? इसकी विशेषताएँ बताइए। 3

(What is meant by training ? What is its charactersitics.)

उत्तर—**प्रशिक्षण का अर्थ** (Meaning of Training)—प्रशिक्षण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी विशिष्ट कार्य को करने की किसी व्यक्ति की योग्यता, निपुणता तथा कुशलता में वृद्धि की जाती है। प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारी को न केवल कार्य के प्रति साम्रान्य ज्ञान प्राप्त होता है अपितु उसकी सौंपे गये कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। पहल करने की क्षमता, वर्तमान उत्पादन

Scanned with CamScanner

प्रणालियों में सुधार करने की योग्यता तथा उत्पादन की किस्म में सुधार करने की दशा में मार्गदर्शन मिलता है। प्रशिक्षण का उद्देश्य कृत्य की आवश्यकताओं तथा कर्मचारी की वर्तमान क्षमता के अन्तर को पाटना है। प्रशिक्षण कभी न समाप्त होने वाली अर्थात् सतत् प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारी के व्यवहार, उत्पादकता तथा निष्पादन तीनों में सुधार होता है। उसके मनोबल में वृद्धि होती तथा वह पूरी रुचि, लगन एवं निष्ठा से कार्य करने के लिए प्रेरित होता है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन, उत्पादकता तथा किस्म तीनों में सुधार होता है।

एडविन बी. फिलप्पो (Edwin B. Flippo) के अनुसार, "किसी विशेष कार्य को करने के लिए कर्मचारी के ज्ञान तथा चातुर्य में वृद्धि करने से सम्बन्धित क्रिया को प्रशिक्षण कहते हैं।"

विशेषताएँ—प्रशिक्षण की विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(1) **प्रशिक्षण का एक निरन्तर, पूर्ण व्यवस्थित एवं नियोजित प्रक्रिया का होना** (Training is a continuous, well organised and planned process)—प्रशिक्षण कोई ऐसा कार्य नहीं है जिसे एक बार करने से मुक्ति मिल जाय वरन् यह एक निरन्तर व्यवस्थित तथा नियोजित प्रक्रिया है। औद्योगिक जगत में होने वाले नित्य नये-नये आविष्कारों तथा परिवर्तनों ने यह परम आवश्यक बना दिया है कि कर्मचारियों को निरन्तर प्रशिक्षण मिलता रहे।

(2) **नये तथा पुराने दोनों प्रकार के कर्मचारियों के लिए आवश्यक है** (Essential for both new and old employees)—प्रशिक्षण की आवश्यकता केवल नये कर्मचारियों के लिए ही नहीं पड़ती वरन् पुराने एवं अनुभवी कर्मचारियों के लिए भी पड़ती है। इसका कारण यह है कि जैसे-जैसे उत्पादकता में जटिलता आती जा रही है तथा उत्पादन के नये-नये तरीकों का आविष्कार हो रहा है, वैसे-वैसे प्रशिक्षण की विषय-सामग्री तथा उत्पादन विधियों एवं तकनीकों में भी परिवर्तन तथा सुधार आता जा रहा है।

(3) **ज्ञान, चातुर्थ तथा कुशलता में वृद्धि** (Increase in knowledge, skill and efficiency)—प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारियों को कार्य करने की नवीन विधियों एवं तकनीकों के बारे में आवश्यक जानकारी दी जाती है। इससे उनके ज्ञान, चातुर्य तथा कुशलता में वृद्धि होती है।

13. कार्यशील पूँजी का उदाहरण सहित अर्थ बताइए। 3

(Define working capital with example.)

उत्तर—कार्यशील पूँजी का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and definition of working capital)—सरल शब्दों में, कार्यशील पूँजी से आशय चालू सम्पत्तियों के चालू दायित्व पर अधिक्य से है। दूसरे शब्दों में, यदि चालू सम्पत्तियों के योग में से चालू दायित्वों के योग को घटा दिया जाय तो जो शेष बचेगा, वह 'कार्यशील पूँजी' कहलायेगी। चालू सम्पत्तियों से आशय उन सम्पत्तियों से है जो स्थिर न रहकर बदलती रहती हैं, जैसे—हस्ते रोकड़, बैंक में रोकड़, विविध देनदार, अन्तिम स्टॉक, प्रदत्त आय, प्राप्त विपत्र, विपणन योग्य प्रतिभूतियाँ, पूर्वदत्त व्यय आदि, जबकि चालू दायित्व से आशय उन दायित्वों से है जिनका यथाशीघ्र भुगतान (सामान्यत: एक वर्ष) में करना होता है, जैसे—बैंक अधिविकर्ष, विविध लेनदार, देय विपत्र, अदत्त व्यय आदि। कार्यशील पूँजी का अर्थ एक कम्पनी के निम्न चिट्ठे (Balance Sheet) के उदाहरण से और अधिक स्पष्ट हो जायेगा—

एक्स कम्पनी लिमिटेड

चिट्ठा (31 मार्च, 2008 को)

दायित्व (Liabilities)	धनराशि (Amount)	सम्पत्तियाँ (Assets)	धनराशि (Amount)
	रु.		रु.
चालू दायित्व (Current Liabilities)	1,00,000	चालू सम्पत्तियाँ (Current Assets)	4,00,000
स्थायी दायित्व (Fixed Liabilities)	9,00,000	स्थायी सम्पत्तियाँ (Fixed Assets)	6,00,000
	10,00,000		10,00,000

उपरोक्त उदाहरण में, यदि चालू सम्पत्तियों अर्थात् 4,00,000 रु. में से चालू दायित्व अर्थात् 1,00,000 रु. को घटा दिया जाये तो शेष 3,00,000 रु. बचेगा। यही कार्यशील पूँजी कहलायेगी।

Scanned with CamScanner

उत्तर—प्रतिभूतियों के व्यवसाय में निवेशकों के हितों की सुरक्षा करने, देश भर में फैली हुई स्कन्ध विपणियों के काम-काज की देखभाल करने एवं उन पर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित करने के उद्देश्य से भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड की स्थापना की गई। इसे 'सेबी' (SEBI) के नाम से भी जाना जाता हैं, इसकी स्थापना भारतीय संसद द्वारा पारित 'भारतीय प्रतिभूमि एवं विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992' (SEBI Act, 1992) के अन्तर्गत एक सांविधिक निकाय के रूप में की गई है। इसे वैधानिक दर्जा प्राप्त है जिसका पृथक् वैधानिक अस्तित्व एवं अविच्छिन्न उत्तराधिकार है। इसका प्रमुख कार्यालय मुम्बई में स्थित है तथा क्षेत्रीय क्रमश: दिल्ली, कोलकाता तथा चेन्नई में स्थित है।

सेबी अधिनियम, 1992 के अनुसार, ''सेबी एक समामेलित संस्था है जिसका अविच्छिन्न उत्तराधिकार है। इसको अपने नाम से वाद प्रस्तुत करने, चल तथा अचल सम्पत्ति पाने, धारण करने तथा निपटारा करने का अधिकार प्राप्त है। सेबी पर वाद भी प्रस्तुत किया जा सकता है।''

15. केन्द्रीकरण का अर्थ, लाभ व हानि का वर्णन कीजिए। 3

(Explain the meaning, merits and demerits of centralisation.)

उत्तर—केन्द्रीकरण (Centralisation)—अधिकारों को उच्च स्तर पर सीमित रखने को केन्द्रीकरण कहते हैं। जब अधिकांश निर्णय उच्च प्रबन्धकों द्वारा या उनके अनुमोदन द्वारा लिए जाते हैं और निम्न व मध्य स्तरीय प्रबन्ध उन निर्णयों को क्रियान्वित करने का ही कार्य करते रहते हैं तो उसे केन्द्रीकरण कहा जाता है। एलेन के शब्दों में, ''केन्द्रीकरण संगठन केन्द्रीय बिन्दुओं पर अधिकार का सुव्यवस्थित एवं संगत आरक्षक है।'' केन्द्रीकरण की स्थिति में निर्णय कार्य बिन्दुओं से ऊपर के स्तर पर लिए जाते हैं।

केन्द्रीकरण के कारण (Reasons for centralisation)—विभिन्न संगठनों में निम्न कारणों से प्राधिकार का केन्द्रीयकरण किया जाता है—

(1) **व्यक्तिगत नेतृत्व को सुविधाजनक बनाना** (To facilitate personal leadership)—छोटी संस्थाओं एवं व्यवसाय की प्रारम्भिक अवस्था में सफलता एक व्यक्ति के नेतृत्व व मार्गदर्शन पर निर्भर करती है। इस नेतृत्व को सुगम बनाने के लए सम्पूर्ण प्राधिकार उस व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित किये जाते हैं।

(2) **कार्य की एकरूपता प्राप्त करना** (To promote uniformity of action)—यदि संगठन की अनेक इकाइयाँ हैं और उनके संचालन में नीतियों व कार्यों में निरूपता रखना आवश्यक है तो केन्द्रीकरण की नीति अपनाई जाती है। इससे सभी इकाइयों में समानता बनी रहती है।

(3) **एकीकरण प्रदान करना** (To provide integration)—किसी भी संस्था की सफलता के लिए उसके विभिन्न अंगों में समन्वय स्थापित करना आवश्यक है। केन्द्रीकरण द्वारा यह कार्य आसानी से किया जा सकता है। आपसी मतभेद उत्पन्न नहीं होते हैं।

(4) **आपातकालीन परिस्थितियों का सामना** (To handle emergencies)—जहाँ व्यवसाय की परिस्थितियाँ अनिश्चित और व्यवसाय को संकट में डालने वाली हों वहाँ निर्णय लेने के अधिकारों को उच्च प्रबन्धकों तक सीमित रखना आवश्यक हो जाता है। केन्द्रीकरण द्वारा अनिश्चितताओं का सामना करने के लिए विचार युक्त शीघ्र निर्णय लिए जा सकते हैं।

केन्द्रीकरण के लाभ (Merits of centralization)—

(i) केन्द्रीकरण से समन्वय, नियन्त्रण व निर्णयन आदि में सुविधा होती है।

(ii) केन्द्रीकरण मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है।

(iii) केन्द्रीकरण द्वारा कार्यक्रमों में एकरूपता बनी रहती है।

(iv) समस्त संगठन उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है।

केन्द्रीकरण की हानियाँ (Demerits of centralization)—

(i) इसमें उत्तम निर्णय लेने में कठिनाई होती है और उच्च प्रबन्धकों पर कार्य बोझ बढ़ जाता है।

(ii) निम्न स्तर के प्रबन्धकों का विकास नहीं हो पाता और उनका मनोबल गिर जाता है।

(iii) उनमें पहल शक्ति व प्रेरणा शक्ति का अभाव रहता है।

(iv) उच्च प्रबन्धकों का अधिकांश समय दैनिक कार्यों में लग जाता है और वे महत्वपर्ण कार्यों पर उचित समय नहीं दे पाते।

Scanned with CamScanner

16. प्राथमिक व गौण बाजार का अर्थ बताइए। प्राथमिक बाजार में पूँजी एकत्रित करने की तीन विधियाँ बताइए।
(Explain the meaning of primary and secondary market. State three methods of raising capital from primary market.) 4

उत्तर—(I) प्राथमिक बाजार (Primary Market)—प्राथमिक बाजार से आशय उस बाजार से है जिसमें दीर्घकाल के लिए पूँजी एकत्रित करने के उद्देश्य से अंशों, ऋण-पत्रों, बॉण्डों व अन्य प्रतिभूतियों को पहली बार बेचा जाता है। इस प्रकार इस बाजार का सम्बन्ध नवीन निर्गमनों से होता है। इस कारण प्राथमिक बाजार को नय निर्गमन बाजार (new issues market) भी कहते हैं। इस बाजार के माध्यम से नई पुरानी दोनों प्रकार की कम्पनियाँ आवश्यक पूँजी एकत्रित करती हैं।

(II) गौण बाजार (Secondary Market)—गौण बाजार से आशय उस बाजार से है जहाँ पर पूर्व निर्गमित प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय होता है। कोई भी प्रतिभूति (अंश ऋण-पत्र आदि) जब प्रथम बार बेची जाती हैं तो वह प्राथमिक बाजार की क्रिया होती है परन्तु जब उसी प्रतिभूति का पुन: विक्रय होता है तो यह गौण बाजार की क्रिया होती है। प्रतिभूतियों का पुन: क्रय-विक्रय स्कन्ध विपणि (stock exchange) के माध्यम से होता है। इस समय भारत में कुल मिलाकर 24 स्कन्ध विपणियाँ हैं जोकि भारत के विभिन्न भागों में फैली हुई हैं। इनमें से सबसे प्रमुख स्कन्ध विपणियाँ (मुम्बई) स्कन्ध विपणि तथा भारतीय राष्ट्रीय स्कन्ध विपणि लि. मुम्बई है। यहाँ पर केवल उन्हीं प्रतिभूतियों (अंशों) का क्रय-विक्रय होता है जो पहले से इनमें अनुसूचित (listed) हैं। यह क्रय-विक्रय इनमें पंजीकृत दलालों के माध्यम से होता है। गौण बाजार का मूलभूत उद्देश्य प्रतिभूतियों में तरलता उत्पन्न करना है।

(III) पूँजी एकत्रित करने की विधियाँ (Various methods of raising capital)—इसमें पूँजी एकत्रित करने के लिए निम्न विधियों का उपयोग किया जाता है—

(i) **सार्वजनिक निर्गमन** (Public issue)—इस विधि के अन्तर्गत कम्पनी पहले प्रविवरण का निर्गमन करती है। तत्पश्चात् जनता को अंश तथा ऋण-पत्र खरीदने के लिए आमन्त्रित करती है। कम्पनी द्वारा अपनाई गई इस क्रिया को सार्वजनिक निर्गमन अथवा बिक्री का प्रस्ताव कहते हैं।

(ii) **निजी व्यवस्था** (Private placement)—इस विधि के अन्तर्गत कम्पनी अपने अंशों को निजी साधनों एवं सम्पर्कों के द्वारा निवेशकों के छोटे-छोटे समूहों जैसे—वित्तीय संस्थाओं, दलालों, साहूकारों एवं म्यूचुअल कोषों आदि को विक्रय करती है। इस विधि के अपनाने से कम्पनी सार्वजनिक निर्गमन करने की कठिनाइयों से बच जाती है।

(iii) **अधिकार निर्गमन** (Right issue)—इस विधि के अन्तर्गत विद्यमान कम्पनी अपने विद्यमान अंशधारियों को अंश खरीदने के लिए आमन्त्रित करती है। इस प्रकार के निर्गमन को 'अधिकार निर्गमन' कहते हैं। पूँजी एकत्रित करने की इस विधि का उपयोग प्रतिष्ठित कम्पनियों द्वारा किया जाता है, जैसे—टिस्को, रिलायन्स, एल. एन. टी आदि। 4

17. विज्ञापन तथा विक्रय संवर्द्धन में अन्तर स्पष्ट करें।
(Differentiate between advertising and sales promotion.)

उत्तर—विज्ञापन तथा विक्रय संवर्द्धन में अन्तर निम्नलिखित हैं—

क्र. सं. (S.No.)	अन्तर का आधार (Basis of Difference)	विज्ञापन (Advertising)	विक्रय संवर्द्धन (Sales Promotion)
1.	अर्थ (Meaning)	विज्ञापन उत्पाद की माँग का निर्माण तथा उसे बनाये रखने में सहायता प्रदान करता है।	विक्रय संवर्द्धन उपभोक्ता को अधिक से अधिक उत्पाद खरीदने के लिए प्रेरित करता है।
2.	उद्देश्य Objectives)	इसका उद्देश्य उत्पादक तथा उत्पाद की अनुकूल छवि निर्मित करना है।	इसका उद्देश्य विक्रय में वृद्धि करना है।
3.	प्रभाव (Influence)	विज्ञापन उपभोक्ता को प्रभावित करता है।	विक्रय संवर्द्धन वितरण माध्यम को प्रभावित करता है।
4.	अभिमुखीकरण (Orientation)	विज्ञापन ग्राहकोन्मुखी होता है।	विक्रय संवर्द्धन उत्पादोंन्मुखी होता हैं

Scanned with CamScanner

5.	हरकत (Movement)	विज्ञापन क्रेता को उत्पाद की ओर ले जाता है।	विक्रय संवर्द्धन उत्पाद को क्रेता की ओर ले जाता है।
6.	समयावधि (Time Period)	इसका प्रभाव लम्बे समय में सामने आता है।	इसका प्रभाव एक सीमित अवधि में जबकि विक्रय संवर्द्धन अभियान चल रहा हो, सामने आता है।
7.	क्षेत्र (Scope)	विज्ञापन का क्षेत्र व्यापक है।	विज्ञापन की तुलना में विक्रय संवर्द्धन का क्षेत्र सीमित है।

18. कार्यशील पूँजी को प्रभावित करने वाले किन्हीं चार घटकों को बताइए। 4

(Explain any four factors affecting working capital.)

उत्तर—कार्यशील पूँजी को प्रभावित करने वाले घटक इस प्रकार हैं—

(1) **व्यवसाय की प्रकृति** (Nature of Business)—कार्यशील पूँजी की मात्रा को प्रभावित अथवा निर्धारित करने वाला प्रमुख घटक व्यवसाय की प्रकृति है। जनोपयोगी व्यावसायिक इकाइयों जैसे—रेलवे, सड़क, गैस आदि में अपेक्षाकृत कम कार्यशील पूँजी से काम चल जाता है। इसका कारण यह है कि इनकी सेवाओं की निरन्तर माँग रहती है और उनका भुगतान तत्काल होता रहता है। कुछ परिवहन सेवाओं में तो ग्राहकों से अग्रिम धनराशि लेकर सेवा प्रदान की जाती है। इसके विपरीत, निर्माणी तथा व्यावसायिक इकाइयों में जहाँ काफी माल स्टॉक में रखना पड़ता है तथा माल का उधार विक्रय होता है, कार्यशील पूँजी अधिक रखनी पड़ती है।

(2) **निर्माण प्रक्रिया की अवधि** (Length of Manufacturing Process)—निर्माण प्रक्रिया की अवधि से आशय कच्चे माल को निर्मित माल में परिवर्तित करने में लगने वाले समय से है। यदि निर्माण प्रक्रिया अधिक समय लेने वाली हो तो स्वाभाविक तौर पर कच्चे माल को निर्मित माल का रूप प्रदान करने में अधिक समय, अधिक लागत और अधिक श्रम लगता है जिसके परिणामस्वरूप अधिक मात्रा में कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत जहाँ निर्माण प्रक्रिया की अवधि कम है, वहाँ कम मात्रा में कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

(3) **व्यवसाय चक्र** (Business Cycle)—व्यवसाय चक्र भी कार्यशील पूँजी की मात्रा को प्रभावित करता है। व्यापार/व्यवसाय में तेजी तथा मन्दी का चक्र निरन्तर चलता रहता है। जब तेजी का चक्र चलता है तो माँग में वृद्धि हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप मूल्यों तथा उत्पादन में वृद्धि होती है एवं व्यावसायिक क्रियाओं का विस्तार होता है। उत्पादन में वृद्धि के लिए आधुनिकीकरण का भी सहारा लिया जाता है। इसके कारण अधिक मात्रा में कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत, यदि मन्दी का चक्र चलता है तो माल की बिक्री में कमी आ जाती है। इसके परिणामस्वरूप मूल्यों तथा उत्पादन दोनों में गिरावट आती है। व्यावसायिक क्रियाओं का विकास भी अवरुद्ध हो जाता है। अतएव कम मात्रा में कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

(4) **प्रतियोगिता का स्तर** (Level of Competition)—व्यवसाय में प्रतियोगिता के स्तर का भी कार्यशील पूँजी की मात्रा पर प्रभाव पड़ता है। बाजार में जितनी तीव्र प्रतियोगिता होगी, उतनी ही अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी, ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए उदार-उधार नीति अपनाई जा सकती है एवं विभिन्न प्रकार की छूटें एवं रियायतें दी जा सकती हैं। ऐसी स्थिति में अधिक मात्रा में कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी इसके विपरीत प्रतियोगिता के अभाव में कम मात्रा में कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी। इसका कारण यह है कि माल का विक्रय नकद होता है तथा ग्राहक अग्रिम भुगतान भी कर देते हैं।

19. ''विज्ञापन अनावश्यक तथा अपव्ययी है।'' क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? अपने उत्तर के समर्थन में कारण दीजिए। 4

("Advertising is unnecessary and wasteful." Do you agree with this statement ? Give reasons in support of your answer.)

उत्तर—विज्ञापन जहाँ एक ओर समाज के विभिन्न वर्गों के लिए लाभप्रद है, वहाँ दूसरी ओर समाज के लोगों द्वारा ही इसकी कटु शब्दों में आलोचनाएँ की जाती हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **गेलब्रेथ** तथा प्रमुख दार्शनिक एवं इतिहासकार **अर्नोल्ड टॉयन्बी** ने विज्ञापन की कड़े शब्दों में आलोचनाएँ की हैं। उनके अनुसार, ''यह मानव जाति के नैतिक मूल्यों को कम कर देता है तथा मानव की आवश्यकताओं में वृद्धि कर आध्यात्मिक दृष्टि से उसे असन्तुष्ट बना देता है।'' विज्ञापन के विरुद्ध आलोचनाएँ अग्रलिखित हैं—

Scanned with CamScanner

(1) **चंचलता**—विज्ञापन उपभोक्ताओं के मन को चलायमान कर देता है क्योंकि वह विज्ञापन की चमक-दमक से बहुत प्रभावित हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह उस वस्तु को नहीं खरीद पाता जिसको कि वह वास्तव में खरीदना चाहता है बल्कि उस वस्तु को खरीदता है जिसने उसके मन को मोह लिया है, जैसे—सिंगर कपड़ा सिलने की मशीन के स्थान पर ऊषा मशीन खरीदना।

(2) **धन का अपव्यय**—बहुत-से उपभोक्ता उन वस्तुओं को खरीदने के लिए लालायित हो उठते हैं जो कि उनके लिए निरर्थक होती हैं अथवा विकास की वस्तुएँ होती हैं, जैसे—शराब की बोतल। इस प्रकार से उनका सीमित धन अनावश्यक वस्तुओं पर खर्च हो जाता है।

(3) **मिथ्या प्रचार**—विज्ञापन एक ठग-विद्या बन गई है क्योंकि इसके द्वारा बहुत-सी मिथ्या बातों का प्रचार किया जाता है। मिथ्या विज्ञापन के सम्बन्ध में एक और बात बड़ी मशहूर है। एक बार एक व्यक्ति ने अखबार में यह विज्ञापन दिया कि 1 (एक) रु. के डाक टिकट भेजिये, आपको हजारों रुपये कमाने की सरल विधि बताई जायेगी। हजारों व्यक्तियों ने एक रुपये की टिकटें भेजीं। कुछ दिनों के उपरान्त प्रत्येक के पास-एक पोस्टकार्ड आया जिसमें लिखा था, ''हज़ारों रुपया कमाने की वही विधि अपनाइये जो मैंने आपसे एक-एक रुपया वसूल करके अपनाई है।''

(4) **अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा को जन्म**—विज्ञापन द्वारा अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा को जन्म मिलता है जिससे वस्तुओं के मूल्य में अनायास कमी करनी पड़ती है। वस्तुओं के मूल्य में यह कमी उसकी क्वालिटी को गिराकर की जाती है।

(5) **फैशन में परिवर्तन**—विज्ञापन सदैव वस्तुओं के गुण तथा फैशन में परिवर्तन करते रहते हैं। उदाहरण के लिए, पेरिस की सुन्दरियाँ प्रत्येक सप्ताह अपने हैट को बदल देती हैं। इन आकस्मिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उपभोक्ता तथा फुटकर विक्रेता दोनों को ही क्षति पहुँचती है।

(6) **सामाजिक बुराइयाँ**—विज्ञापन अधिकतर आरमदायक एवं विलासिता सम्बन्धी वस्तुओं के विक्रय के लिए किया जाता है। इसके कई सामाजिक दुष्परिणाम निकलते हैं। किन्हीं व्यक्तियों को जब किसी एक चीज के उपभोग करने की बुरी आदत पड़ जाती है तो उसका छूटना बहुत कठिन होता है, जैसे—सिगरेट पीना। आज कल विभिन्न आकर्षण तरीकों से किया जाता है, जैसे—"Smoking adds to personality.", "Where is symbol of friendship." इन विज्ञापनों से प्रभावित होकर बहुत-से व्यक्ति सिगरेट पीना आरम्भ कर देते है, बाद में यह आदत छूटती नहीं है।

(7) **एकाधिकार को प्रोत्साहन**—जिन वस्तुओं का चिह्नित विज्ञापन होता है, वे प्राय: बाजार में अपना अधिकार स्थापित कर लेती हैं और इस प्रकार फिर उत्पादक अथवा व्यापारी धीरे-धीरे इच्छानुसार वस्तुओं का मूल्य परिवर्तन करते रहते हैं

(8) **नगर स्वच्छता में कमी**—यत्र-तत्र किया हुआ विज्ञापन नगर की प्राकृतिक शोभा को कम कर देता है। इस प्रकार मकानों की दीवारें एवं सड़कें आदि गन्दी दिखाई देने लगती हैं।

(9) **मूल्य वृद्धि का उपभोक्ताओं पर भार**—विज्ञापन करने से बहुत-सा अपव्यय होता है जिससे मूल्यों में वृद्धि हो जाती है क्योंकि विज्ञापन का भार तो उपभोक्ताओं को ही सहन करना पड़ता है।

(10) **अश्लील विज्ञापन**—अश्लील विज्ञापन से जनता का नैतिक पतन होता है। आजकल अश्लील चित्र प्रस्तुत करना तो आम बात हो गई है। लोगों द्वारा इस तरह के विज्ञापनों का विरोध करने से यह ज्ञात हो जाता है कि ऐसा विज्ञापन जन समुदाय की भावनाओं को ठेस पहुँचाता है।

4

20. उद्यमिता विकास कार्यक्रम की आवश्यकता बताइए।

(State the need of enterpreneur development programme.)

उत्तर—किसी भी राष्ट्र के विकास में उद्यम की बहुत महत्ता है, खासकर भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ आर्थिक तथा सामाजिक समस्याएँ हैं। उद्यम न केवल औद्योगिक क्षेत्र में बल्कि देश के कृषि एवं सेवा क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

उद्यमिता के महत्व को संक्षिप्त रूप से हम इस तरह से देख सकते हैं—

(1) **स्व-रोजगार प्रदायक** (Self Employement Provider)—उद्यमिता 'जियो औरों को भी जीने दो' की नीति पर चलती है। आज विश्व का हर देश बेरोजगारी की भयानकता से गुजर रहा है। उद्यमिता इस अभिशाप को दूर करती है। एक ओर साहसी स्वयं नए विचार, परिवर्तन, उत्पाद लेकर व्यवसाय में प्रवेश कर अपना स्वरोजगार तो पाता ही है साथ में अनेक लोगों को इस कार्य से जोड़कर उन्हें भी रोजगार दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(2) **आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण का विकेन्द्रीकरण** (Decentralisation of the Centralized Economic Power)—आज यह उद्यमिता की ही देन है कि आर्थिक शक्ति कुछ खास लोगों के हाथ में केन्द्रित न होकर विकेन्द्रित होती जा रही है। देश में नये-नये साहसी परिवर्तनों के साथ प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। ऐसा होने से आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण पर पर्याप्त रोक लगी है।

Scanned with CamScanner

(3) **नये उत्पाद एवं आविष्कारों को बढ़ावा** (Encouragement to Innovation and New Products)—उद्यमिता एक सतत् विकास प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत साहसी उद्योग में हमेशा नये-नये आविष्कार कर बाजार की परिवर्तित दशा के अनुसार वही उत्पादन करता है जिसकी माँग देश के अलावा विदेशों में भी हो सके ताकि निर्यात प्रतिस्थापन बढ़ सके और विदेशी मुद्रा अधिकाधिक एकत्रित हो सके।

(4) **मानवीय संसाधन का उपयोग** (Utilisation of Human Resources)—मानवीय संसाधन राष्ट्र की एक अमूल्य धरोहर है किन्तु यदि इसका सही और पूर्ण उपयोग नहीं हुआ तो देश और समाज के लिए बोझ होता है। उद्यमिता लोगों में साहसी होने की प्रवृत्ति जगाती है। समाज को नये अवसरों की जानकारी देकर उनमें आत्मविश्वास जगाती है। चुनौतियों का सामना करने की तकनीक बताती है इसके चलते मानवीय संसाधन साहसी बनकर दायित्व के बदले सम्पत्ति बन जाता है।

(5) **स्वदेशी उद्यम को बढ़ावा** (Encouragement to Domestic Enterprises)—उद्यमिता स्वदेशी उद्यम को फलने-फूलने में मददगार होती है। ऐसा इसलिए कि स्वदेशी साहसी अपने देश में अधिकाधिक उद्योग बढ़ाना चाहता है, जबकि विदेशी साहसी यहाँ की कमाई अपने देश ले जाता है और इस तरह उनके भरोसे रहने से उद्योग और अर्थव्यवस्था स्थिर बनी रह जाती है।

(6) **तीव्र आर्थिक विकास** (Rapid Economic Growth)—आर्थिक विकास की तीव्र गति प्राप्त करना हम सभी की एक अहम कामना है जिसके लिए तीव्र औद्योगिक विकास की आवश्यकता है। साथ ही इस विकास की विश्व-बाजार के साथ प्रतिद्वन्द्विता होनी चाहिए। इस आवश्यकता की पूर्ति में उद्यमिता की महत्वपूर्ण भूमिका है जो साहसी को तराश कर उसमें ऐसा गुण भरती है कि वह उद्योग जगत का सूत्रधार और इंजन बनकर अन्ततः देश के आर्थिक विकास में वृहत् भागीदार साबित होता है।

21. प्रशिक्षण एवं विकास से क्या आशय है ? इन दोनों में कोई चार अन्तर लिखिए। 5

(What is meant by training and development ? write any four difference between them.)

उत्तर—प्रशिक्षण—प्रशिक्षण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी विशिष्ट कार्य को करने की किसी व्यक्ति की योग्यता, निपुणता तथा कुशलता में वृद्धि की जाती है। प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारी को न केवल कार्य के प्रति सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है अपितु उसको सौंपे गये कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न होती है।

एडविन बी. फिलप्पो (Edwin B. Flippo) के अनुसार, "किसी विशेष कार्य को करने के लिए कर्मचारी के ज्ञान तथा चातुर्य में वृद्धि करने से सम्बन्धित क्रिया को प्रशिक्षण कहते हैं।"

विकास—विकास एक ऐसी नियोजित एवं संगठित प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कर्मचारी किसी संस्था का कार्य सुचारु रूप में चलाने के लिए पर्याप्त ज्ञान एवं कौशल अर्जित करते हैं संक्षेप में, कर्मचारी विकास कर्मचारियों के पेशेवर विकास की प्रक्रिया है इसमें प्रशिक्षण एवं कार्य के ज्ञान अर्जन का कार्य दोनों साथ-साथ चलते हैं

पीटर एफ. ड्रकर (Peter F. Drucker) के अनुसार, "एक ऐसी संस्था जो अपने प्रबन्धकों को स्वयं पैदा नही कर सकती समाप्त हो जायेगी। कुल मिलाकर किसी संस्था की प्रबन्धकों को बनाने की योग्यता कुशल एवं सस्ता माल बनाने से अधिक महत्वपूर्ण है।"

प्रशिक्षण तथा विकास में अन्तर

क्र. सं. (S.No.)	अन्तर का आधार (Basis of Difference)	प्रशिक्षण (Training)	विकास (Development)
1.	अर्थ (Meaning)	प्रशिक्षण का आशय ऐसी क्रिया से है जिसके द्वारा किसी कार्य विशेष को करने के लिए कर्मचारियों के ज्ञान, योग्यता, चातुर्य एवं कुशलता में वृद्धि की जाती है।	विकास एक नियोजित एवं संगठित प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारियों को प्रबन्ध के विभिन्न स्तर पर कार्य करने के लिए विकसित किया जाता है।
2.	उद्देश्य (Objectives)	प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारियों को विशिष्ट कार्य करने के लिए योग्य बनाना है।	विकास का उद्देश्य कर्मचारियों की क्षमता का पूर्ण उपयोग करना है।

Scanned with CamScanner

3.	सम्बन्ध (Relationship)	प्रशिक्षण का सम्बन्ध मुख्यत: वर्तमान से होता है।	विकास का सम्बन्ध वर्तमान तथा भविष्य दोनों से होता है।
4.	क्षेत्र (Scope)	प्रशिक्षण विकास प्रक्रिया का एक भाग है अतएव इसका क्षेत्र संकुचित है।	विकास का क्षेत्र व्यापक है। प्रशिक्षण इसका एक भाग है।

5

22. वित्तीय प्रबन्धक के कार्य बताइए।

(Discuss the functions of financial management.)

उत्तर—''वित्तीय व्यवसाय जीवन रक्त कहलाता है।'' अतएव व्यवसाय के स्वस्थ संचालन के लिए पर्याप्त वित्त का होना परम आवश्यक है। इस दृष्टि से वित्तीय प्रबन्ध का प्राथमिक कार्य व्यवसाय के कुशल संचालन के लिए यथा समय पर्याप्त वित्त की व्यवस्था करना है। वित्तीय प्रबन्धकों ने वित्त के कार्य को दो भागों में बाँटा है—

(I) प्रशासनिक कार्य (Administrative Functions)

(II) नैतिक अथवा दैनिक कार्य (Routine Functions)

(I) **प्रशासनिक कार्य** (Administrative Functions)—वित्तीय प्रबन्ध की आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्त कार्य में निम्न तीन प्रकार के निर्णय-वित्त प्रबन्धन, विनियोग तथा लाभांश सम्मिलित किये जाते हैं। वित्तीय आवश्यकताओं का यथा सम्भव सही पूर्वानुमान लगाकर उनकी पूर्ति के स्रोतों की व्यवस्था करना, विनियोगकर्ताओं द्वारा प्रदत्त निधि का अधिकतम प्रभावशाली ढंग से उपयोग करना, व्यवसाय के स्वामियों के अंशों के मूल्य में वृद्धि करना आदि वित्तीय प्रबन्ध के उद्देश्य हैं जिनकी पूर्ति के लिए वित्त प्रबन्ध निम्नलिखित प्रशासकीय कार्य सम्पन्न करता है—

(1) **वित्तीय पूर्वानुमान** (Financial Forecasting)—वित्तीय प्रबन्ध की आधारशिला वित्तीय पूर्वानुमान है और इस पर वित्तीय अनुमान लगाना वित्तीय प्रबन्ध का प्रथम कार्य है। वित्तीय पूर्वानुमान से आशय वित्त की भावी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में पहले से अनुमान लगाना है। एक नवीन व्यावसायिक संस्था के सम्बन्ध में शुरू में इस प्रकार का पूर्वानुमान प्रवर्तकों द्वारा लगाया जाता है, परन्तु चालू व्यावसायिक संस्था में प्रत्येक परियोजना के सम्बन्ध में वित्तीय आवश्यकताओं का पूर्वानुमान वित्तीय पूर्वानुमान लगाने के सम्बन्ध में विभिन्न सांख्यिकीय, गणितीय एवं लेखांकन तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

(2) **वित्तीय नियोजन** (Financial Planning)—वित्तीय पूर्वानुमानों को लगाने के पश्चात् वित्तीय प्रबन्ध का दूसरा कार्य वित्तीय नियोजन है। वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत निम्न तीन प्रकार की उप-क्रियाएँ सम्पन्न की जाती है—(i) वित्तीय उद्देश्यों का निर्धारण, (ii) वित्तीय नीतियों का निर्धारण तथा (iii) वित्तीय कार्य विधियों का विकास।

(3) **कोषों की अधिप्राप्ति** (Procurement of Funds)—यह वित्तीय प्रबन्ध का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य है। इसके अन्तर्गत प्रस्तावित पूँजी ढाँचे के अनुसार विभिन्न स्रोतों से व्यवसाय के संचालन के लिए अपेक्षित कोष अर्थात् पूँजी की अधिप्राप्ति के लिए आवश्यक कार्यों को सम्पन्न किया जाता है।

(4) **वित्तीय निर्णय** (Financial Decision)—यह वित्तीय प्रबन्ध का चतुर्थ कार्य है। इसके अन्तर्गत वित्तीय स्रोतों का निश्चय करना, उनकी तुलनात्मक लागतों का अध्ययन करना, संस्था के अंशधारियों के अंशों पर पड़ने वाले प्रभाव की जाँच करना आदि को शामिल करते हैं।

(5) **विनियोग निर्णय** (Investment decision)—यह वित्तीय प्रबन्ध का पाँचवा कार्य है। इसके अन्तर्गत प्राप्त निधि का विभिन्न सम्पत्तियों से विनियोग करने सम्बन्धी निर्णय सम्मिलित करते हैं। स्थायी सम्पत्तियों में विनियोग (अल्पकालीन) की मात्रा निर्धारित करने सम्बन्धी निर्णय वित्तीय प्रबन्धक द्वारा लिए जाते है।

(II) **नैतिक अथवा दैनिक कार्य** (Routine Functions)—इसके अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्ध के उन कार्यों को सम्मिलित किया जाता है जो कि नैत्यिक अथवा दैनिक प्रकृति के होते हैं और प्राय: प्रतिदिन, निम्न स्तरीय कर्मचारियों द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। इन कार्यों की अपनी महत्ता होती है क्योंकि इन कार्यों की सहायता से ही उच्च वित्तीय अधिकारी निर्णयों को लेते हैं। इसमें निम्न कार्यों को शामिल किया जाता है—

(i) वित्तीय अभिलेख रखना,

(ii) वित्तीय विवरणों को तैयार करना,

(iii) रोकड़ शेष बचाये रखना एवं,

(iv) महत्वपूर्ण वित्तीय प्रलेखों को सुरक्षित करना।

Scanned with CamScanner

23. व्यावसायिक पर्यावरण का अर्थ स्पष्ट कीजिए। सामान्य व्यावसायिक पर्यावरण के दो आयामों की संक्षेप में विवेचना कीजिए। 5

(Explain the meaning of business environment. Briefly discuss any two dimensions of general environment of business.)

उत्तर—व्यावसायिक वातावरण से आशय उन समस्त घटकों, शक्तियों, परिस्थितियों के योग से है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यवसाय को प्रभावित तो करते हैं किन्तु उन पर व्यावसायिक संस्था (प्रबन्ध) का कोई नियन्त्रण नहीं होता। दूसरे शब्दों में, व्यावसायिक वातावरण से आशय उन समस्त बाहरी आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं तकनीकी शक्तियों से है जो कि व्यवसाय एवं उसके प्रचालन को प्रभावित करती हैं। प्रबन्ध के संगठनात्मक उद्देश्यों को इन घटकों, शक्तियों एवं परिस्थितियों में कार्य करते हुए प्राप्त करना होता है। इन घटकों में हम मुख्यत: ग्राहकों, पूर्तिकर्ताओं, ऋणदाताओं, सरकारी नीतियों, राजनैतिक ढाँचा, वैधानिक नियमन सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन, अनतर्राष्ट्रीय संगठन आदि को सम्मिलित करते हैं। ये सभी घटक व्यवसाय के नियन्त्रण के परे होते हैं किन्तु व्यवसाय को प्रभावित करते हैं। इन्हें हम बाहरी घटक कहते हैं।

(1) **वी. पी. माइकेल** (V. P. Michael) के अनुसार, ''व्यावसायिक वातावरण पर्यावरणीय घटकों का योग है जो कि व्यवसाय के लिए वातावरण प्रदान करता है। इसका ऐसे प्रत्येक व्यावसायिक संगठन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है जो कि उसमें क्रियाशील होता है।''

(2) **रेनकी एवं शाल** (Reinecke and Schoell) के अनुसार, ''व्यावसायिक वातावरण में उन सभी बाहरी घटकों को सम्मिलित किया जाता है जिनसे व्यवसाय अनावृत तथा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित होता है।''

व्यावसायिक वातावरण की एक उपयुक्त परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में दी जा सकती है— ''व्यावसायिक वातावरण को बाहरी घटकों के समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके अन्तर्गत आर्थिक घटक, सामाजिक-सांस्कृतिक घटक, सरकारी एवं वैधानिक घटक, जनांकिकीय घटक तथा प्राकृतिक घटक सम्मिलित हैं। इन घटकों को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है और ये फर्म या कम्पनी के निर्णयों को प्रभावित करते हैं।''

(1) **आर्थिक वातावरण** (Economic Environment)—आर्थिक वातावरण एक जटिल व्यवस्था है इसको समझने के लिए इसके विभिन्न घटकों को जान लेना आवश्यक है। आर्थिक वातावरण के प्रमुख घटक हैं—(I) आर्थिक दशाएँ (Economic conditons), (II) आर्थिक नीतियाँ (Economic policies), एवं (III) आर्थिक प्रणालियाँ (Economic systems)।

(I) **आर्थिक दशाएँ** (Economic Conditions)—इसके अन्तर्गत (i) अर्थव्यवस्था की प्रकृति अर्थात् क्या अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है, उद्योग प्रधान है अथवा सेवा प्रधान; (ii) आर्थिक संसाधन; (iii) राष्ट्रीय आय तथा इसका वितरण; (iv) आर्थिक विकास का स्तर; (v) उद्योगों की प्रकृति उत्पादन लागत व औद्योगिक विकास; (vi) पूँजी बाजार; (vii) प्रतिस्पर्धा, जोखिम, उद्यमवृत्ति, नवाचार आदि की दशाएँ शामिल की जाती हैं।

(II) **आर्थिक नीतियाँ** (Economic Policies)—आर्थिक नीतियों के अन्तर्गत राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति,औद्योगिक नीति, विदेशी व्यापार नीति, कर नीति तथा अन्य सरकारी नीतियाँ शामिल की जाती हैं। अतएव प्रत्येक व्यावसायिक फर्म इन नीतियों द्वारा निर्धारित ढाँचे के अन्तर्गत अपना कार्य करती हैं। विभिन्न सरकारों जैसे केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारें आदि द्वारा बनाये गये विभिन्न अधिनियम भी इसी के अन्तर्गत आते हैं।

(III) **आर्थिक प्रणालियाँ** (Capital Systems)—ये प्राय: तीन प्रकार की होती हैं—

(i) **पूँजीवादी प्रणाली** (Capitalistic System)—इसे स्वतन्त्र बाजार अर्थव्यवस्था भी कहा जाता है। इस प्रणाली की कुछ विशेषताएँ हैं, स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा, आर्थिक व व्यावसायिक स्वतन्त्रता, मूल्य तन्त्र की बाजार क्रियाशीलता तथा पूँजी का सर्वोच्च स्थान आदि।

(ii) **साम्यवादी प्रणाली** (Socialistic System)—यह सरकार द्वारा संचालित प्रणाली है जिसके अन्तर्गत सरकार ही आर्थिक क्रियाओं का केन्द्रीय नियोजन करती है। इसका उद्देश्य सामाजिक कल्याण होता है।

(iii) **मिश्रित प्रणाली** (Mixed System)—यह पूँजीवादी तथा साम्यवादी दोनों प्रणालियों का मिश्रण है। इसके अन्तर्गत सरकारी तथा निजीक्षेत्र के व्यवसाय दोनों साथ-साथ कार्य करते हैं। सरकारी क्षेत्र (Public Sector) का संचालन सरकार करती है परन्तु किसी क्षेत्र (Private Sector) पर भी सरकार का नियन्त्रण होता है।

(2) **सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण** (Socio-cultural Environment)—समाज तथा संस्कृति प्रबन्ध का आधार है। अतएव प्रबन्धक को सामाजिक ज्ञान का होना अत्यन्त आवश्यक है। सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत सामाजिक मूल्य, सामाजिक परम्पराएँ, सामाजिक संस्थाएँ, सामाजिक मान्यताएँ, शिक्षा, सामाजिक विश्वास आदि आते हैं। सांस्कृति वातावरण से अभिप्राय देश की संस्कृति, परम्पराओं, धाराणाओं, रीतियों एवं दृष्टान्तों के संयोजन से है।

Scanned with CamScanner

सामाजिक वातावरण के विभिन्न तत्व व्यवसाय को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं। सामाजिक तन्त्र जिसमें जाति प्रथा, संयुक्त परिवार प्रथा, बाल विवाह प्रथा आदि शामिल होते हैं, व्यवसाय के क्रियाकलापों को प्रभावित करता है। सामाजिक मूल्य एवं विचार धाराएँ प्रबन्ध के पेशाकरण के लिए जिम्मेदार हैं। सामाजिक शिक्षा जिसमें व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता, शिक्षण एवं प्रशिक्षण तथा प्रबन्धकीय विकास कार्यक्रम शामिल किए जा सकते हैं, ने व्यावसायिक नैतिकता, व्यावसायिक संस्कृति को प्रभावित किया है।

प्रभावशाली प्रबन्ध के लिए सांस्कृतिक वातावरण पर विचार किया जाना भी आवश्यक है। अतएव, आज के युग में प्रत्येक संस्था को मानवीय आकांक्षाओं, प्राथमिकताओं, रुचियों, विचारों व अपेक्षाओं आदि को ध्यान में रखकर काम करना होता है। इसलिए उसे मानवीय समाज, उसकी संस्कृति, उसके मूल्यों आदि का सम्मान करना अनिवार्य होता है। जैसे-जैसे शिक्षा का स्तर, जीवन स्तर सुधरता है वैसे विश्वास तथा मान्यताएँ घटती जाती हैं। परन्तु तब तक प्रबन्धकों को इनके प्रति सजग रहना होगा।

(3) **राजनीतिक वातावरण** (Political Environment)—आज के युग में कोई भी व्यवसाय राजनीतिक वातावरण के प्रभाव से बच नहीं सकता है। व्यवसाय को सरकार के दृष्टिकोण के अनुसार अपनी क्रियाओं को करना पड़ता है। राजनीतिक निर्णय व्यवसाय की दिशा ही बदल देते हैं। राजनीतिक परिवर्तनों के कारण व्यवसाय की संरचना में अन्तर आ जाते हैं।

राजनीतिक वातावरण में सरकार का स्वरूप, अर्थात् सरकार प्रजातन्त्रवादी है, अथवा साम्यवादी है या अधिनायकवादी है; सत्तारूढ़ दल की नीतियाँ व कार्यक्रम, राजनीतिक विकास की दशा, व्यवसाय और आर्थिक विषयों का राजनीतिकरण, राजनीतिक नैतिकता, कानून और व्यवस्था की स्थिति, राजनीतिक स्थिरता, उद्योग व अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप की मात्रा, सरकारी नीतियाँ जैसे राजकोषीय, मौद्रिक, औद्योगिक, आयात-निर्यात, श्रम-सम्बन्धी नीतियाँ, राजनीतिक दलों तथा दबाव समूहों (Presure Groups) की भूमिका आदि घटकों को शामिल किया जा सकता है। राजनीतिक माहौल एवं व्यवसाय के प्रति दृष्टिकोण ही राजनीतिक वातावरण का निर्धारण करता है।

अतएव व्यवसाय के प्रबन्धकों को वही करना होता है जो देश की सरकार की नीतियों के अनुरूप हो।

(4) **वैधानिक वातावरण** (Legal Environment)—व्यवसाय तथा कानून में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रबन्धकों को हमेशा कानून के दायरे में ही काम करना पड़ता है। प्रत्येक उपक्रम कानूनों के विशाल जालों से घिरा हुआ है। वैधानिक वातावरण जहाँ एक ओर अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करता है वहीं दूसरी ओर यह अनेक प्रतिबन्ध तथा बाधाएँ भी उत्पन्न करता है।

वैधानिक वातावरण के अन्तर्गत विभिन्न कानूनी नीतियाँ, विभिन्न नियन्त्रण, श्रम-सम्बन्धी कानून, उपभोक्ताओं की सुरक्षा के कानून, व्यावसायिक कानून, औद्योगिक अधिनियम, सामाजिक कानून आदि आते हैं। जैसे कम्पनी अधिनियम, अनुबन्ध अधिनियम, वस्तु-विक्रय अधिनियम, कारखाना अधिनियम, औद्योगिक विवाद अधिनियम, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, आयात-निर्यात नियन्त्रण, विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम, सार्वजनिक वितरण नीति, लाइसेंसिंग नीति, साझेदारी अधिनियम, पूँजी नियन्त्रण अधिनियम, आवश्यक कानूनी अनुमतियाँ आदि वैधानिक वातावरण के तत्व कहे जा सकते हैं। इन सबकी आवश्यकतानुसार प्रबन्धकों को जानकारी होनी चाहिए। सरकार के विधायी, प्रशासकीय तथा न्यायपालिका व्यवसाय तथा उसके प्रबन्ध को प्रभावित किये बिना नहीं रहते। विधायी किसी कार्यवाही का निर्धारण करती है तथा नगरपालिका विधायी तथा प्रशासकीय दोनों के कार्यों को देखती है कि इनके द्वारा किये कार्य जनहित में हैं तथा वैधानिक सीमा के अन्तर्गत किए जाते हैं।

(5) **प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी वातावरण** (Technological Environment)—'प्रौद्योगिकी' एक व्यापक अर्थ रखने वाला शब्द है। इससे विभिन्न कार्यों को करने की विभिन्न विधियों से सम्बन्धित ज्ञान का बोध होता है। आविष्कार तथा तकनीक इसमें शामिल हैं। प्रौद्योगिकीय अप्रचलन तथा प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों का उपक्रम की लागतों का, लाभप्रदता, संयन्त्र स्थान, उत्पाद-रेखा, इनके विकास-विस्तार पर भारी प्रभाव पड़ता है। प्रौद्योगिकीय विकास के प्रति जागरूक न रहने का अर्थ है नाश, क्योंकि प्रतिद्वन्द्वी नये विकास का लाभ उठा लेंगे।

आज व्यवसाय तथा उद्योगों में कम्प्यूटर, स्वचालित यंत्रों तथा मानव यन्त्रों का प्रयोग किया जाने लगा है जिससे नई-नई वस्तुओं, नये-नये डिजाइनों, नये-नये किस्मों आदि का सृजन किया जा रहा है। तकनीकी परिवर्तनों के कारण उत्पादन की विधियाँ बदल गई हैं। जिससे न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करना आसान हो गया है। प्रौद्योगिकीय तथा तकनीकी वातावरण के अन्तर्गत नये-नये कम्प्यूटर्स, यंत्र, यांत्रिक सुधार, स्वचालित यंत्र, टेलीविजन, संचार व्यवस्था की खोज, डिजाइन प्रौद्योगिकी के नये आयाम वातावरण प्रौद्यागिकी का विकास आदि शामिल किये जा सकते हैं।

24. बजटीय नियन्त्रण को परिभाषित करें। इसके लाभ तथा सीमाएँ बतायें। 5

(Define budgetary control. Discuss its advantages and disadvantages.)

उत्तर—बजटीय नियन्त्रण (Budget/Control)—बजटीय नियन्त्रण बजट अनुमानों तथा वास्तविक परिणामों में तुलना करने की क्रियाओं को कहते हैं। बजट एक साधन और बजट-नियन्त्रण इस साधन द्वारा व्यवसाय के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास है।

Scanned with CamScanner

व्यवसाय के लक्ष्य की प्राप्ति उत्पादन के साधन के रूप में 6 M's (Men, Money, Machine, Material, Methods and Market) का कुशल और सन्तुलित संयोग है। यदि इन साधनों का सम्मिलित व समन्वित प्रयास लक्ष्य से थोड़ा भी दूर होता है तो सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। यात्रा बजट नियन्त्रण मानव, मशीन, मात्रा, मुद्रा, बाजार और विधियों के प्रयासों को सामूहिक रूप से उपयुक्त व निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर मोड़ता है। बजटरी नियन्त्रण की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

(i) **जार्ज आर. टैरी** के अनुसार, "बजट-नियन्त्रण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा वास्तविक कार्य-कलापों का पता लगाया जाता है, फिर बजट अनुमानों से उसकी तुलना की जाती है ताकि उपलब्धियों की पुष्टि की जा सके अथवा अनुमानों से समायोजन करके या अन्तरों के कारण का सुधार करके, अन्तरों को दूर किया जा सके।"

बजटरी नियन्त्रण के लाभ (Advantages of Budgetary Control)–बजटरी नियन्त्रण के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

(1) **भावी सम्भावनाओं पर पहले से ही विचार करना** (To think in advance of future events)–बजट भावी व्यावसायिक क्रियाओं का एक पूर्वानुमान होता है। इसमें जिन कठिनाइयों के आने की सम्भावना होती है उन पर पहले से ही विचार कर लिया जाता है। इससे प्रबन्ध समाधान के लिए पहले ही आवश्यक उपाय कर सकता है।

(2) **उद्देश्य का स्पष्टीकरण** (Clarity of Objectives)–बजटरी-नियन्त्रण व्यवसाय के उद्देश्यों को स्पष्ट करने में सहायक होता है। प्रबन्ध-संचालक से लेकर पर्यवेक्षक तक को यह ज्ञात होता है कि निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उसे क्या करना है? व्यवसाय के उद्देश्य से स्पष्ट होने से कार्य के संचालन में कुशलता आती है।

(3) **अधिकारों तथा दायित्वों के सौंपने में सहायक** (Helpful in delegation of authority and responsibility)–बजटरी-नियन्त्रण प्रबन्धक को अपने अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों को स्पष्ट रूप में सौंपने में सहायता करता है। इसलिए बजटीय परिणाम प्राप्त न होने पर व्यक्ति विशेष को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(4) **समन्वय स्थापित करना** (To establish co-ordination)–बजटरी-नियन्त्रण द्वारा व्यवसाय के सभी अंगों के कार्यों को एक लक्ष्य की ओर समन्वित किया जा सकता है। इस विधि द्वारा व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं, विभागों तथा कर्मचारियों के कार्यों में समन्वय स्थापित किया जाता है।

(5) **प्रभवशाली नियन्त्रण** (Effective Control)–यह प्रबन्ध में नियन्त्रण का एक प्रभावशाली एवं सार्थक उपकरण है जिसके माध्यम से उचित नियन्त्रण करके उद्देश्यों को पूरा करना है। बजटरी-नियन्त्रण के अन्तर्गत वास्तविक प्रगति का बजट अनुमानों से तुलना करके प्रबन्धक प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित कर सकता है।

(6) **नियोजन में निश्चितता** (Certainity in Planning)–बजटरी नियन्त्रण की सहायता से नियोजन में निश्चितता आती है क्योंकि वजट संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

बजटरी नियन्त्रण की सीमाएँ (Limitations of Budgetary Control)–

(1) **बजट प्रबन्धकीय प्रेरणा के अवरोधक**–बजट प्रबन्धकीय प्रेरणा के अवरोधक बन सकते हैं क्योंकि प्रत्येक अधिकारी बजटीय लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यह प्रबन्धक की स्वतन्त्रता का हनन करता है और वह अपनी इच्छानुसार अपने विभाग या अनुभाग का प्रबन्ध नहीं कर सकता है।

(2) **बजटीय लक्ष्यों की प्राप्ति में कठिनाई**–बजटीय लक्ष्यों की प्राप्ति असम्भव हो सकती है क्योंकि बजट पूर्वानुमानों पर आधारित होते हैं और वे पूर्वानुमान पूर्णतः सही नहीं हो सकते।

(3) **अधिकारियों में मनुमुटाव**–बजटरी नियन्त्रण संस्था के विभिन्न कार्यकारी अधिकारियों में मतभेद व मनमुटाव पैदा करता है क्योंकि प्रत्येक अधिकारी बजटीय प्रावधानों का ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा लेने का प्रयत्न करता है।

(4) **अन्तरों को छिपाने का प्रयत्न**–बजट अनुमानों तथा वास्तविक प्रगति में जब अन्तर आने लगता है तो विभागीय प्रबन्ध उसे छिपाने की कोशिक करता है। कोई भी प्रबन्धक पूर्व घटनाओं का बहाना लेकर अपनी अकुशलताओं को छिपा सकता है।

(5) **निरीक्षण तथा प्रशासनिक कठिनाइयाँ**–यदि निरीक्षण तुथा प्रशासकीय कठिनाइयों को दूर नहीं किया जाता है तो बजटरी नियन्त्रण सफल नहीं हो सकता क्योंकि बजटरी नियन्त्रण के लिए निरीक्षण तथा प्रशासन की समुचित व्यवस्था होना अनिवार्य है।

(6) **परिवर्तनीय परिस्थितियाँ**–परिवर्तनीय परिस्थितियों जैसे सरकारी नीतियाँ, व्यापारिक-चक्र व मुद्रा प्रसार में बजट निर्माण एवं उसका नियन्त्रण कार्य कठिन हो जाता है। बजट बन जाने पर उसमें समय-समय पर संशोधन करने पड़ते हैं।

(7) **अधिकारियों में असहयोग की भावना**–बजटरो नियन्त्रण की एक प्रमुख सीमा यह है कि संस्था के अधिकारियों में सहयोग व आपस में मिल-जुल कर काम करने की भावना का अभाव रहता है।

Scanned with CamScanner

25. प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण को निर्धारित करने वाले तत्व बताइये।
(Discuss the factors effecting supervision.)

उत्तर–प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Governing Effective Supervision) **अथवा प्रभावी पर्यवेक्षण के सिद्धान्त** (Principles of Effective Supervision)–एक पर्यवेक्षण व्यवस्था को प्रभावपूर्ण कहा जायेगा यदि अपेक्षित परिणाम प्राप्त हो रहे हों अर्थात् संस्था में उपलब्ध सभी साधनों का अनुकूलतम उपयोग हो रहा हो पर्यवेक्षण का प्रभावपूर्ण होना कोई स्वचालित व्यवस्था (Auto system) नहीं है बल्कि इसके लिए अनेक प्रयास करने होते है। ये प्रयास ही प्रभाव पर्यवेक्षण के सिद्धान्त कहलाते हैं जो कि निम्नलिखित हैं–

(1) **अनुकूलन कार्य वातावरण** (Favourable Work Environment)–अनुकूल कार्य वातावरण तैयार करना प्रभावी पर्यवेक्षण की प्रथम आवश्यकता हैं। अनुकूल वातावरण का अभिप्राय सब कुछ सन्तुलित होने से है सही व्यक्ति को सही काम सौंपना, आवश्यकता पड़ने पर परामर्श देना, सुरक्षा के प्रबन्ध करना, काम में प्रयोग होने वाली आवश्यक सामग्री व मशीनें उपलबध करवाना, सहयोग की भावना-जागृत करना, कार्यस्थल पर सफाई का प्रबन्ध करना आदि बातों पर ध्यान देकर अनुकूल वातावरण तैयार किया जा सकता है। अनुकूल वातावरण अधीनस्थों द्वारा पर्यवेक्षक की बातों को ऐच्छिक रूप से स्वीकार करना सुनिश्चित करता है जिसके परिणामस्वरूप आज्ञाकारिता में वृद्धि होती है और पूरा वातावरण शान्तिमय हो जाता है।

(2) **योग्य पर्यवेक्षक** (Competent Supervisor)–प्रभावी पर्यवेक्षण का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व यह है कि पर्यवेक्षण का काम एक कुशल व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से एक कुशल व्यक्ति वह माना जायेगा जिसमें ये योग्यताएँ विद्यमान हों–संस्था के बारे में ज्ञान, ठीक प्रकार बोलने की क्षमता, ठीक प्रकार सुनने की क्षमता, सहयोग को सुनिश्चित करने की क्षमता, निर्देश देने एवं व्याख्या करने की क्षमता, अधीनस्थों की भावनाओं को समझने की क्षमता, ठीक समय पर ठीक बात कहने की क्षमता, और परेशानी अथवा दबाव के समय नियन्त्रण न खोने की क्षमता। इस प्रकार एक व्यक्ति जिसमें इन सभी गुणों का समावेश हो, को पर्यवेक्षक बनाया जाये तो प्रभावी पर्यवेक्षण सम्भव हो सकता है।

(3) **कर्मचारी प्रधान पद्धति** (Employee Centred Approach)–अधीनस्थों से काम लेने की दो पद्धतियाँ हो सकती हैं–कर्मचारी प्रधान पद्धति (Employee Centred Approach) तथा काम प्रधान पद्धति (Work Centred Approach)। पहली पद्धति में कर्मचारियों को काम पर प्राथमिकता दी जाती है जबकि दूसरी पद्धति में इसका बिल्कुल विपरीत होता हैं यदि हम दूसरी पद्धति को स्वीकार करते हुए काम करें तो वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होंगे। इसके विपरीत पहली पद्धति से वांछित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि कर्मचारी प्रधान पद्धति में कर्मचारियों की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाता है जबकि काम प्रधान पद्धति में केवल अधनीस्थों के काम अथवा उनकी उत्पादकता को ही देखा जाता है और उनकी सुख-सुविधा को अनदेखा कर दिया जाता है।

(4) **अपवाद द्वारा प्रबन्ध** (Management by Exception)–अपवाद का सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सत्य के साथ प्रबन्धशास्त्र में उपलब्ध है। इस सिद्धान्त की यह मान्यता है कि यदि पर्यवेक्षक मुख्य-मुख्य कार्यों को अपने नियन्त्रण में रखे और दैनिक कार्यों को अधीनस्थों के भरोसे छोड़ दे तो सभी कार्यों का निष्पादन भली प्रकार हो सकेगा। इस प्रकार पर्यवेक्षक के पास समय बचेगा जिसका उपयोग अन्य रचनात्मक कार्यों में किया जा सकता है। अत: कहा जा सकता है कि अपवाद का सिद्धान्त पर्यवेक्षण को प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

(5) **निरीक्षण का विस्तार** (Span of Supervision)–पर्यवेक्षण को प्रभावी बनाने के लिए इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए। कि कोई भी व्यक्ति इतना सक्षम नहीं होता कि असंख्य लोगों पर नियन्त्रण कर सके। प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक एवं शारीरिक शक्ति सीमित होती है जिसके कारण यह एक सीमा से अधिक अधीनस्थों का निरीक्षण ठीक प्रकार से नहीं कर सकता। अत: कहा जा सकता है कि अधीनस्थों की उपयुक्त संख्या पर्यवेक्षक की कार्यकुशलता को बढ़ाती है।

(6) **उपयुक्त संदेशवाहन प्रणाली** (Suitable Communication System)–पर्यवेक्षक उच्चस्तरीय प्रबन्धकों एवं श्रमिकों के बीच एक कड़ी होती है। इसके माध्यम से ऊपर की बातें नीचे और नीचे की बातें ऊपर पहुँचाई जाती हैं। इस कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए उपयुक्त संदेशवाहन पद्धति को लागू किया जाना जरूरी हैं संदेशवाहन एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा संगठन में होने वाली क्रियाओं की व्याख्या की जाती है परिवर्तनों को लागू किया जाता है, कर्मचारियों में सहयोग की भावना जागृत की जाती है, स्वच्छ मानवीय सम्बन्धों का निर्माण किया जाता है तथा प्रत्येक कर्मचारी में संस्था का एक महत्वपूर्ण अंग होने के गौरव की भावना का संचार किया जाता है। अत: स्पष्ट है कि उपयुक्त संदेशवाहन पद्धति को लागू करके पर्यवेक्षण को प्रभावी बनाया जा सकता है।

(7) **स्पष्ट एवं सरल संगठनात्मक ढाँचा** (Clear and Simple Organisational Set-up)–पर्यवेक्षण को प्रभावी बनाने के लिए संगठनात्मक ढाँचे को स्पष्ट एवं सरल बनाया जाना अति आवश्यक है। इसके अन्तर्गत संस्था में विभिन्न पद स्थापित

Scanned with CamScanner

किये जाते हैं और उनके मध्य सम्बन्धों की व्याख्या की जाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कौन किसका अधिकारी है और कौन किसका अधीनस्थ। स्पष्ट संगठनात्मक ढाँचे से पर्यवेक्षक को यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्था में उसकी स्थिति क्या है तथा उसके अधिकार एवं दायित्व क्या हैं ? इस प्रकार वह पहले स्वयं अभिप्रेरित होगा और तत्पश्चात् अपने अधीनस्थों को अभिप्रेरित करने में भी सफल होगा।

(8) **दोहरी विकास धारणा** (Dual Advancement Concept)—पर्यवेक्षण को प्रभावी बनाने के लिए पर्यवेक्षण को 'दोहरी विकास धारणा' को अपनाना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि उसे अपने व्यक्तित्व का विकास भी करना चहिए और अधीनस्थों का भी।

प्रश्न 26. उपभोक्ता संरक्षण के माध्यम बताइए। (6)

(What is the sources of consumer protection?)

उत्तर—उपभोक्त संरक्षण के मुख्य माध्यम इस प्रकार हैं—

(1) **सावधान उपभोक्ता** (Cautious Consumers)—उपभोक्ता संरक्षण के प्रथम माध्यम के रूप में उपभोक्ता को अपना संरक्षण स्वय करना चाहिए। उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहना चाहिए। सचेत उपभोक्ता ही विक्रेताओं से अपने अधिकारों की माँग कर सकता है। अत: उपभोक्ता को चाहिए कि वे स्वयं ही अपने अधिकारों को जाने और विक्रेताओं के अनुचित व्यवहार के प्रति आवाज उठायें।

(2) **उपभोक्ता संघ** (Consumer Associations)—उपभोक्ता संघ उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। जब एक अकेला उपभोक्ता अपने अधिकारों को पूरा करवाने में असफल रहता है तो वह उपभोक्ता संघ की मदद ले सकता है। उपभोक्ता संघ विक्रेता पर उपभोक्ता के हितों का ध्यान रखने के लिए दबाव डाल सकते हैं। उपभोक्ता संघ उपभोक्ताओं को शिक्षित करने का काम भी करते हैं

(3) **व्यापार संघ** (Business Associates)—उपभोक्ता संरक्षण के लिए केवल उपभोक्ताओं के प्रयास ही पर्याप्त नहीं हैं बल्कि व्यवसायियों द्वारा भी ऐसे प्रयास किये जाते हैं। व्यवसायी स्वयं अपने संघ बनाकर उपभोक्ता से अनुचित व्यवहार पर प्रतिबन्ध लगा सकते हैं। व्यापार संध व्यवसायियों के लिए आचार संहिता तैयार कर सकते हैं। आचार संहिता में यह निश्चित कर दिया जाता है कि उन्हें उपभोक्ताओं से किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये। ऐसा करना व्यवसाय जगत के हित में होता है

(4) **सरकार** (Government)—सरकार विभिन्न अधिनियम बनाकर उपभोक्ताओं के हितों को सुरक्षित करती है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 सरकार द्वारा पीड़ित उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए बनाया गया एक महत्वपूर्ण अधिनियम है। इसके लिए तीन स्तरीय (Three Tier) न्यायिक तन्त्र का प्रावधान किया गया है, जैसे—

(1) जिला स्तर पर जिला फोरम,

(2) राज्य स्तर पर राज्य आयोग तथा

(3) राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय आयोग

तीन स्तरीय न्यायिक तन्त्र उपभोक्ताओं को निम्नलिखित उपचार उपलब्ध करवाता है—

(i) वस्तु के दोषों को दूर करना।

(ii) दोषपूर्ण वस्तु के स्थान पर नयी वस्तु देना।

(iii) उपभोक्ता को माल का मूल्य वापस करना।

(iv) क्षति के लिए उपभोक्ता को हर्जाने का भुगतान करना।

(1) **जिला फोरम** (District Forum)—उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अनुसार, राज्य सरकार प्रत्येक जिले में एक या अधिक जिला फोरम स्थापित कर सकती है। इसकी विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

(i) इसमें एक अध्यक्ष सहित तीन सदस्य होते हैं जिसमें से एक महिला सदस्य का होना अनिवार्य है। ये नियुक्ति राज्य सरकार करती है।

(ii) जिला फोरम में 20 लाख रुपए से कम मूल्य के विवादों से सम्बन्धित शिकायतों का समाधान किया जाता है।

(iii) शिकायत उपभोक्ता द्वारा किसी रजिस्टर्ड उपभोक्ता संघ के माध्यम से की जा सकती है।

(iv) शिकायत दर्ज होने पर इस बात की सूचना विरोधी पक्षकार को भेज दी जाती है।

(v) परीक्षण के बाद यदि यह सिद्ध हो जाये कि माल दोषपूर्ण है तो विरोधी पक्षकार को जिला फोरम अग्र में से एक या अधिक आदेश दे सकता है—

Scanned with CamScanner

(a) वस्तु के दोषों को दूर किया जाये।

(b) दोषपूर्ण वस्तु के स्थान पर नयी वस्तु दी जाये।

(c) उपभोक्ता को माल का मूल्य लौटा दिया जाये।

(2) **राज्य आयोग** (State Commission)—राज्य आयोग प्रत्येक राज्य में राज्य सरकार द्वारा स्थापित किया जाता है इसमें भी तीन सदस्य होते हैं जिसमें से एक महिला सदस्य का होना अनिवार्य है, इसकी नियुक्ति राज्य सरकार करती है। राज्य आयेग में 20 लाख से 1 करोड़ रुपए तक के मूल्य के विवादों से सम्बन्धित शिकायतों का समाधान किया जाता है। जिला फोरम की भाँति इसमें माल का परीक्षण कराने पर अगर दोषी साबित हो जाये तो उसे भी एक या अधिक आदेश दिये जा सकते हैं। यदि कोई भी पक्षकार जो राज्य आयोग के निर्णय से सन्तुष्ट न हो तो वह 30 दिन के अन्दर राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील कर सकता है।

(3) **राष्ट्रीय आयोग** (National Commission)—राष्ट्रीय आयोग की स्थापना केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है। इसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—इसमें एक अध्यक्ष सहित पाँच सदस्य होते हैं। जिसमें से एक महिला सदस्य का होना अनिवार्य है। इनकी नियुक्ति केन्द्र सरकार करती है। राष्ट्रीय आयोग में 1 करोड़ से अधिक के मूल्य के विवादों से सम्बन्धित शिकायतों का समाधान किया जाता है। शिकायत दर्ज होने पर इसकी सूचना विरोधी पक्षकार को भेज दी जाती है।

अथवा

उपभोक्ता संरक्षण के महत्व के किन्हीं पाँच कारणों को स्पष्ट कीजिए।

(Explain any five reasons of the importance of consumer protection.)

उत्तर—भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के महत्व के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं—

(1) **अज्ञानी उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा के लिए** (To Protect the Interest of Innocent Consumers)—भारत का सामान्य उपभोक्ता अशिक्षित, अज्ञानी, अनुभवहीन, अकेला, असहाय, असंगठित एवं निहत्था है। उसे उत्पाद के प्रकार, गुणवत्ता एवं मूल्य की जानकारी नहीं है। ऐसी स्थिति में घटिया किस्म के उत्पाद का उपयोग करने से उसके स्वास्थ्य को क्षति पहुँच सकती है और यहाँ तक कि उसकी मृत्यु भी हो सकती है। यही नहीं, येन-केन तरीकों से उससे अधिक मूल्य लेकर उसे लूटा भी जा सकता है।

(2) **सामाजिक उत्तरदायितव के प्रति चेतना जगाने के लिए** (To Arouse Awareness towards Social Responsibility)—आजकल सभी स्तरों पर व्यवसायियों में अपनी सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति चेतना जाग्रत कराने के प्रयास किये जा रहे हैं। इसका कारण यह है कि येन-केन तरीकों से अधिकाधिक लाभ कमाने की लालसा उन्हें सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन बना रही है। इस दृष्टि से भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता अनुभव की गयी है।

(3) **उपभोक्ताओं का व्यवसायियों के शोषण करने की प्रवृत्ति से रक्षा करने के लिए** (To Safeguard the Consumers against the Tendency of Exploitation by Businessmen)—आज व्यवसायियों ने उपभोक्ताओं का शोषण करने के लिए तरह-तरह के तरीके निकाले हुये हैं जैसे—कम तोलना, उपभोग की वस्तुओं में मिलावट करना, कृत्रिम कमी उत्पन्न कर देना, काला बाजारी करना आदि। भारत जैसे देश में जहाँ का उपभोक्ता अपेक्षाकृत अधिक असंगठित, अनपढ़ या कम पढ़ा-लिखा, लाचार निहत्था एवं अपने अधिकारों के प्रति कम जागरूक है, आसानी से व्यवसायियों की शोषण की प्रवृत्ति का शिकार बन जाता है। उसे व्यवसायियों की इस दूषित शोषण करने की मनोवृत्ति से बचाने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की नितान्त आवश्यकता है।

(4) **उपभोक्ताओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए** (Consumer Awareness towards their Rights)—आज का सामान्य उपभोक्ता अपने अधिकारों के प्रति उदासीन है। या तो उसे अपने अधिकारों के प्रति जानकारी नहीं है अथवा यदि उसे थोड़ी-सी जानकारी है भी तो वह विभिन्न कारणों से इतना निराश हो चुका है कि वह कुछ करने के लिए अपने आपको निःसहाय अकेला महसूस करता है। इस दृष्टि से भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है

(5) **आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध कराने के लिए** (For supplying necessary informations)—आज सामान्य उपभोक्ता को उपभोग वस्तुओं की गुणवत्ता, टिकाऊपन, शुद्धता, उपयोगिता, उपयोग विधि, तुलनात्मक-स्तर आदि के बारे में जानकारी कराना परम आवश्यक है ताकि वह उक्त जानकारी के आधार पर सही समय पर सही वस्तु का चयन कर सके।

(6) **उपभोक्ता की प्रभुसत्ता तथा जवाबदेही की स्थापना करने के लिए** (For establishing consumer sovereignty and business accountability)—जनसंख्या में हो रही भारी वृद्धि तथा इसके कारण उपभोक्ताओं की निरन्तर बढ़ती हुई उत्पादों एवं सेवाओं की माँग के कारण आज उसकी प्रभुसत्ता तथा व्यवसाय की जवाबदेही समाप्त हो चुकी है। इन दोनों की पुनः स्थापना के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता अनुभव की गई।

Scanned with CamScanner

(7) **प्रदूषण से सुरक्षा प्रदान करने के लिए** (For providing safety against pollution)—आज प्रदूषण की समस्या चाहे वह जल प्रदूषण हो, वायु प्रदूषण हो अथवा ध्वनि प्रदूषण हो दिनों-दिनों गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। आज के उपभोक्ता को शुद्ध उपभोग्य वस्तुओं का तो कहना ही क्या, उसे उपभोग करने के लिए पर्याप्त शुद्ध जल एवं वायु तक नहीं मिल पाती है जिसके कारण उसका सामान्य जीवन नारकीय बन चुका है। प्रदूषण की इस दूषित बीमारी के प्रति उपभोक्ता को सुरक्षा प्रदान करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है।

27. वितरण माध्यम के चयन का निर्धारण करने वाले घटकों का संक्षेप में वर्णन कीजिए। 6

(Explain in brief the factors determining choice of channels of distribution.)

उत्तर—वितरण के माध्यम को निर्धारित अथवा प्रभावित करने वाले घटक—

(I) **बाजार अथवा विपणि सम्बन्धी बातें** (Market Considerations)—बाजार सम्बन्धी निम्न बातें वितरण के माध्यम के चुनाव पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं—(1) **सम्भावित ग्राहकों की संख्या**—यदि वस्तु विशेष का सम्भावित बाजार विस्तृत (जैसे—कपड़ा, अनाज, साइकिल आदि) है तो मध्यस्थों की सेवाओं का सहारा लेना होगा। इसके विपरीत, यदि वस्तु का बाजार सीमित है तो उत्पादक अथवा निर्माता अपनी वस्तुओं का विक्रय स्वयं कर सकता है। (2) **बाजार का भौगोलिक केन्द्रीकरण**—यदि वस्तु के ग्राहक किसी विशेष निश्चित क्षेत्र तक ही सीमित हैं तो उत्पादक अथवा निर्माता प्रत्यक्ष विक्रय का अनुकरण कर सकते हैं। इसके विपरीत, यदि वस्तु का बाजार देशव्यापी है तो ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के विक्रय तरीकों को अपनाना होगा। (3) **आदेशों का आकार**—यदि आदेश कम किन्तु बड़ी मात्रा में आते हैं तो प्रत्यक्ष विक्रय के तरीकों को अपनाना चाहिए। इसके विपरीत, यदि आदेश बहुत अधिक आते हैं किन्तु आदेशित वस्तुओं की मात्रा कम होती है तो थोक व्यापारियों की सहायता लेनी होगी। (4) **ग्राहकों की क्रय करने सम्बन्धी आदतें**—यह भी वितरण के माध्यम को प्रभावित करती हैं, जैसे—उधार क्रय करने की इच्छा, क्रय के उपरान्त की सेवा, व्यय करने की आदत आदि। (5) **वस्तुओं की उपयोगिता**—यह देखना होगा कि वस्तु सामान्य उपभोक्ताओं के लिए है अथवा औद्योगिक संस्थाओं के लिए। यदि वस्तु सामान्य उपभोक्ताओं के लिए है तो उसके लिए फुटकर व्यापारियों की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत, यदि वस्तु औद्योगिक संस्थाओं के लिए है तो उसके लिए थोक व्यापारियों की आवश्यकता होगी।

(II) **वस्तु या उत्पादक सम्बन्धी बातें** (Commodity or Product Considerations)—वस्तु की प्रकृति तथा निम्न विशेषताएँ वितरण में मध्यस्थों की संख्या आदि को प्रभावित एवं निश्चित करती हैं और इस प्रकार वितरण के माध्यम को भी प्रभावित करती हैं—(1) **वस्तु की प्रकृति**—शीघ्र नाशवान (Perishable) वस्तुओं के विक्रय के लिए कम से कम मध्यस्थों की आवश्यकता होती है। इसका कारण यह है कि इनका शीघ्र विक्रय करना होता है अन्यथा खराब हो जाने का भय रहता है। अत: ऐसी वस्तुओं का प्रत्यक्ष अथवा केवल सीमित फुटकर व्यापारियों द्वारा विक्रय करना उपयुक्त रहता है। इसके विपरीत, यदि वस्तु टिकाऊ है तो उसकी माँग निश्चित ही विस्तृत होगी और ऐसी स्थिति में मध्यस्थों की सहायता लेना आवश्यक होगा। (2) **मूल्यवान एवं भारी किस्म की वस्तुओं** के विक्रय के लिए (जैसे—फ्रीज, स्टील की अलमारियाँ, पंखे, स्कूटर, मोटर आदि) विक्रेता मध्यस्थों को चुनना चाहिए जिनके पास संग्रहालय की सुविधाएँ उपलब्ध हों। इनके विक्रय के लिए कम मध्यस्थों की आवश्यकता होती। (3) **यदि कोई वस्तु तकनीकी दृष्टि से अधिक जटिल हो** तो उसके लिए निर्माता को स्वयं अपना संगठन स्थापित करना लाभदायक होगा। इसमें कम मध्यस्थों की आवश्यकता होगी। (4) **प्रमापित अथवा व्यापारिक चिह्न** के कारण बिकने वाली वस्तुओं के लिए उस लाइन के मध्यस्थों की आवश्यकता होगी। (5) **प्रति इकाई लागत**—यदि वस्तुओं की प्रति इकाई लागत कम हो तो मध्यस्थों की लम्बी शृंखला की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत, महँगी किस्म (जैसे—जवाहरात) की वस्तुओं के विक्रय के लिए प्रत्यक्ष विक्रय अथवा कम से कम संख्या में मध्यस्थों की आवश्यकता होगी। (6) **निर्माण की जाने वाली वस्तुओं की संख्या**—यदि निर्माता द्वारा कई प्रकार की वस्तुओं का एक साथ निर्माण किया जाता है तो अत्यधिक संख्या में मध्यस्थों की आवश्यकता होगी; जैसे—हिन्दुस्तान लीवर्स ब्रदर्स। इसके विपरीत एक या दो किस्म की ही वस्तुओं का निर्माण किए जाने पर या तो प्रत्यक्ष विक्रय होगा अथवा कम संख्या में मध्यस्थ होंगे। (7) **सरकारी नियमन**—वस्तु के वितरण माध्यम पर सरकारी नियन्त्रण होने पर उनके विक्रय के लिए सरकार द्वारा अधिकृत विक्रेताओं की आवश्यकता होगी।

(III) **मध्यस्थों सम्बन्धी बातें** (Middlemen Considerations)—मध्यस्थ सम्बन्धी बातें भी वितरण के माध्यम पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। उदाहरण के लिए—(i) मध्यस्थों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएँ, (ii) वितरण की लागत, (iii) इच्छित मध्यस्थों की उपलब्धता, (iv) भावी विक्रय की मात्रा।

(IV) **संस्था या कम्पनी सम्बन्धी बातें** (Unit or Company Considerations)—संस्था सम्बन्धी निम्न बातें भी वितरण के माध्यम का चुनाव करने पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं—(1) **स्वयं संस्था की ख्याति एवं आकार**—यदि स्वयं संस्था की ख्याति बहुत अधिक हो एवं आकार बड़ा हो (जैसे—टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी) तो वह इच्छानुसार वितरण के तरीकों

Scanned with CamScanner

का चुनाव कर सकती है क्योंकि उसकी माँग अधिक होगी तथा पूर्ति कम। (2) **योग्य तथा अनुभवी व्यवस्थापक का होना**—ऐसी संस्थाएँ जिनके पास योग्य तथा अनुभवी व्यवस्थापक होते हैं, वे मध्यस्थों पर अधिक निर्भर रहने के बजाय स्वयं के विक्रय संगठन पर अधिक भरोसा करती हैं, उदाहरणार्थ—बाटा शू कम्पनी, देहली क्लॉथ मिल्स आदि। (3) **उद्योग विशेष की परम्परा**—वितरण के तरीके का चुनाव करने में उद्योग विशेष की परम्परा भी महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। यदि वितरण किसी विशेष प्रकार के मध्यस्थों द्वारा होता है तो उस औद्योगिक इकाई को उसी प्रकार के मध्यस्थों पर निर्भर रहना होगा। (4) **वित्तीय संसाधन**—वितरण के तरीकों का चुनाव स्वयं कम्पनी के वित्तीय संसाधनों पर निर्भर करता है। यदि वित्तीय दृष्टि से कम्पनी कमजोर हो तो उसे एकाकी विक्रय एजेण्टों अथवा थोक व्यापारी की सेवाओं पर निर्भर करना होगा। इसके विपरीत, आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ कम्पनी अपना निजी विक्रय संगठन स्थापित कर सकती है, जैसे—देहली क्लॉथ मिल्स। (5) **मध्यस्थों को सुविधाएँ**—निर्माता मध्यस्थों को कितनी सुविधाएँ प्रदान कर सकता है; यह घटक भी वितरण के माध्यम के चुनाव को प्रभावित करता है। यदि वह सुविधाएँ देने को तैयार नहीं है तो मध्यस्थों की संख्या कम होगी।

अथवा

पैकेजिंग से क्या आशय है ? एक अच्छे पैकेजिंग की विशेषताएँ बताइए।

(What is meant by packaging ? Explain the characteristics of a good packaging ?)

उत्तर—पैकेजिंग का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Packaging)—आधुनिक युग में पैकेजिंग का महत्व दिनो-दिन बढ़ता जा रहा है। पैकेजिंग एक ओर तो उत्पाद को सुरक्षा प्रदान करता है और दूसरी ओर उसके आकर्षण में वृद्धि करता है। सामान्य अर्थ में, पैकेजिंग से आशय किसी उत्पाद को किसी अन्य वस्तु में सुरक्षा के साथ रखा जाना है अथवा लपेटा जाना है तथा उसके बाहरी आवरण पर उत्पाद का नाम एवं ब्राण्ड आदि चिह्नित किया जाना है। पैकेजिंग की परिभाषा भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से दी है। उनमें से कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) **विलियम जे. स्टेण्टन** (William J. Stanton) के अनुसार, "पैकेजिंग को वस्तु-नियोजन की उन सामान्य क्रियाओं के समूह की तरह परिभाषित किया जा सकता है जिसमें किसी वस्तु के लपेटने या आधानपात्र (Container) का उत्पादन करने और उनका डिजाइन बनाने से सम्बन्धित है।"

(2) **आर. एस. डावर** (R.S. Davar) के अनुसार, "पैकेजिंग वह कला और/या विज्ञान है जो एक वस्तु को किसी आधानपात्र में बन्द करने या आधानपात्र को वस्तु के संवेष्ठन के उपयुक्त बनाने हेतु सामग्रियों, ढंगों और साज-सज्जा के विकास एवं प्रयोग से सम्बन्धित है जिससे वस्तु वितरण की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते समय पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे।"

एक अच्छे पैकेज के लक्षण या विशेषताएँ अथवा गुण (Characteristics or Qualities of a Good Packaging)—यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि पैकेजिंग अनेक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होता है परन्तु यह उल्लेखनीय है कि पैकेज वांछित उद्देश्यों को पूरा करने में तभी सक्षम हो सकेगा जबकि उसमें कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ समाविष्ट हों। एक अच्छे पैकेज में निम्नांकित विशेषताएँ होनी चाहिए—

(1) **ध्यानाकर्षण**—पैकेज ऐसा हो जो लोगों का ध्यान आकर्षित करे। आधुनिक प्रतिस्पर्द्धात्मक समय में पैकेज की यह विशेषताएँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। एक ग्राहक प्रारम्भ में ही वस्तु को नहीं देखता। वे पैकेज से प्रभावित होकर ही वस्तु को देखने की इच्छा प्रकट करता है।

(2) **पहचान**—पैकेज ऐसा हो जिसे आसानी से पहचाना जा सके अर्थात् एक बार देखने के पश्चात् ग्राहक उसे तत्काल पहचान सके।

(3) **रुचि उत्पन्न करना**—जो ग्राहक के मन में उत्पाद के प्रति रुचि पैदा कर सके और उसे बनाए रखे।

(4) **इच्छा जाग्रत करना**—पैकेज ऐसा हो जिसे देखकर ग्राहक के मन में उत्पाद को प्राप्त करने की इच्छा जाग्रत हो।

(5) **क्रय बाध्यता**—ग्राहक को उत्पाद क्रय करने के लिए बाध्य करे।

(6) **सुरक्षा**—उत्पाद की पूर्ण सुरक्षा कर सके।

(7) **उत्पाद छवि**—उत्पाद छवि (Product Image) में सुधार करे।

(8) **उपयोगी**—उत्पाद के उपयोग के पश्चात् भी उपयोगी सिद्ध हो, जैसे—'डालडा' या 'रथ' घी के डिब्बे उपयोग के पश्चात् अन्य घरेलू वस्तुओं को रखने के काम में लाए जा सकते हैं।

(9) **स्मरण कराते रहना**—पैकेज ऐसा हो जो उत्पाद विक्रय के उपरान्त भी स्मरण कराता रहे ताकि पुन: विक्रय किया जा सके।

(10) **सुविधा**—पैकेज ऐसा हो जिससे उत्पाद को लाने-ले जाने में सुविधा हो।

पैकेजिंग पैकिंग से भिन्न है (Packaging is distinct from Packing)—प्राय: लोग पैकेजिंग और पैकिंग दोनों को समान मानते हैं एवं दोनों का समान अर्थों में ही उपयोग करते हैं किन्तु इन दोनों में अन्तर है। पैकिंग में उत्पादों को आधानपात्रों

Scanned with CamScanner

(Containers) तथा लपेटनों (Wrappings) में बन्द करना होता है, जबकि पैकेजिंग में इन आधानपात्रों एवं लपेटनों का निर्माण एवं उपयोग भी सम्मिलित है। इस प्रकार पैकिंग वास्तव में पैकेजिंग का ही अंग है।

पैकेजिंग के कार्य (Packaging Functions)—अधिकांश व्यक्ति उत्पाद सुरक्षा को ही पैकेजिंग का एकमात्र कार्य समझते हैं परन्तु वास्तव में ऐसा सोचना उचित नहीं है। बाटा इण्डिया अपने पैकेज से तीन कार्यों की अपेक्षा करता है—(1) उत्पाद सुरक्षा (Product Protection), (2) उत्पाद की मूल्य वृद्धि (Increase in the Value of the Product) एवं (3) उत्पाद का विज्ञापन (Product Advertisement)।

अच्छे पैकेज़िंग की विशेषताएँ—मुख्य रूप से अच्छे पैकेजिंग में निम्नांकित कार्यों अथवा विशेषताओं को सम्मिलित किया जा सकता है—

(1) **सुरक्षा** (Protection)—उत्पाद की सुरक्षा करना अर्थात् उत्पाद को टूट-फूट, क्षय एवं हानियों से बचाना। इसका लाभ निर्माता, वितरक एवं ग्राहक सभी को होता है।

(2) **विपणन क्रियाओं में सुविधा प्रदान करना** (Convenience)—पैकेजिंग के इस सुविधादायक कार्य से मध्यस्थों एवं उपभोक्ताओं दोनों के लिए उत्पाद का उठाना, रखना, लाना तथा ले जाना; स्टोर करना आदि मितव्ययी एवं सुविधाजनक हो जाता है।

(3) **विज्ञापन** (Advertising)—विज्ञापन में सुविधा प्रदान करना है। पैकेज़ विज्ञापन का कार्य भी करता है जिससे विक्रय वृद्धि में सहायता मिलती है। अनेक अवस्थाओं में पैकेज़ इस प्रकार के बनाए जाते हैं कि फुटकर भण्डारों पर प्रदर्शन सामग्री का काम दें। पैकेज पर ब्राण्ड एवं लेबल लगाना भी सुलभ हो जाता है।

(4) **आवश्यक सूचनाएँ** (Essential Informations)—पैकेजिंग ग्राहकों को आवश्यक एवं उपयोगी सूचनाएँ प्रदान करने का भी कार्य करता है। प्राय: अनेक पैकेजों पर उत्पाद के उपयोग के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश छपे होते हैं, जैसे—'सर्फ' या 'डेट' के डिब्बों पर एवं बच्चों के लिए बेची जाने वाली भोजन सामग्री या दूध के डिब्बों पर।

(5) **संग्रह की सुविधा** (Storing)—पैकेजिंग के कारण वस्तुओं को संग्रह करने में सुविधा हो जाती है क्योंकि पैकेज के कारण थोड़े-से स्थान पर ही अधिक मात्रा में माल को संग्रह किया जा सकता है। कुछ उत्पाद बहुत अधिक स्थान घेरते हैं क्योंकि हल्के होते हैं। ऐसे उत्पाद को एक अच्छे पैकेज के द्वारा थोड़े-से स्थान में अधिक मात्रा में एकत्र किया जा सकता है, जैसे—रुई। इस प्रकार पैकेजिंग का कार्य वस्तुओं के संग्रह को सुविधाजनक बनाना भी है।

(6) **पहचान** (Identification)—पैकेज़ कम्पनी द्वारा उत्पादित उत्पाद-पंक्ति के लिए एक सामान्य पहचान प्रदान करता है। एक कम्पनी अपनी सम्पूर्ण उत्पाद-पंक्ति के लिए एक-सा पैकेज काम में ला सकती है।

(7) **विभिन्नीकरण** (Differentiation)—पैकेज उत्पाद विभिन्नीकरण (Production-Differentiation) में सहायक होता है। प्राय: जब दो विभिन्न निर्माताओं के उत्पाद में कोई विशेष भिन्नता नहीं होती है तो भिन्नता पैदा करने के लिए निर्माता पैकेजिंग का सहारा लेते हैं। उपभोक्ताओं की नवीनता के प्रति रुचि को सन्तुष्ट करने के लिए भी समयानुसार पैकेजिंग में परिवर्तन किया जाता है।

(8) **लाभ सम्भावनाएँ** (Profit Possibilities)—अच्छे एवं प्रभावी पैकेजिंग के कारण उपभोक्तागण उत्पाद का अधिक मूल्य भी देने को तत्पर हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप लाभ कमाने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। हम सभी उपभोक्ता जानते हैं कि पहले उस उत्पाद का क्रय करते हैं जिसका पैकेजिंग सुन्दर हो चाहे उसकी कीमत अधिक क्यों न हो।

28. वैज्ञानिक प्रबन्ध से क्या आशय है ? इसके प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन करें। 6

(What is meant by scientific management ? Explain its principles.)

उत्तर—वैज्ञानिक प्रबन्ध का अर्थ (Meaning of Scientific Management)—वैज्ञानिक प्रबन्ध निम्नलिखित दो शब्दों 'वैज्ञानिक' और 'प्रबन्ध' के योग से बना है। वैज्ञानिक प्रबन्ध के अर्थ जानने से पूर्व इन दोनों शब्दों का पृथक्-पृथक् अर्थ जानना भी आवश्यक है। 'वैज्ञानिक' शब्द का अर्थ है विज्ञान सम्बन्धी। विज्ञान शब्द की उत्पत्ति भी दो शब्दों; यथा—वि + ज्ञान से हुई है। 'वि' से आशय विशिष्ट से है और 'ज्ञान' से आशय किसी तथ्य के सम्बन्ध में जानकारी देने से है। इस प्रकार व्यवस्थित विशिष्ट जानकारी या ज्ञान को ही विज्ञान कहा जाता है। 'प्रबन्ध' शब्द का संकीर्ण अर्थ है—अन्य व्यक्तियों से कार्य कराने की युक्ति तथा विस्तृत अर्थ है—निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न मानवीय प्रयासों से सम्बन्ध रखने की कला एवं विज्ञान। अत: वैज्ञानिक प्रबन्ध से आशय किसी कार्य को विशिष्ट ज्ञान सामग्री के आधार पर विभिन्न मानवीय प्रयासों द्वारा पूरा करना है। वैज्ञानिक प्रबन्ध के जन्मदाता **श्री फ्रेडरिक विन्सलो टेलर** ने स्पष्ट किया कि "वैज्ञानिक प्रबन्ध यथार्थ में यह जानने की कला है कि क्या किया जाना है तथा उसको करने की सर्वोत्तम विधि क्या है।" इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि "वैज्ञानिक प्रबन्ध एक दर्शन है अथवा धारणा है जो कार्य और कार्मिकों के प्रबन्ध की तीर एवं तुक्के एवं अँगूठे के नियम पर आधारित परम्परागत

Scanned with CamScanner

विधियों के स्थान पर अनुसन्धान एवं प्रयोगों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के आधार पर अपनायी गयी विधियों के प्रयोग पर बल देते हैं।"

वैज्ञानिक प्रबन्ध की परिभाषाएँ (Definitions of Scientific Management)—विभिन्न विद्वानों ने वैज्ञानिक प्रबन्ध की परिभाषाएँ अपने देश की व्यापारिक स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न दी हैं। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

(1) **एच.एस. पर्सन** के अनुसार "वैज्ञानिक प्रबन्ध से आशय संगठन एवं क्रिया-विधि के सोद्देश्य प्रयास के उस स्वरूप से है जो परम्परा, 'परीक्षण एवं भूल' की प्रक्रिया अथवा आकस्मिक रूप से प्राप्त सिद्धान्तों एवं नियमों पर आधारित होने के स्थान पर वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं विश्लेषण से निकाले गए सिद्धान्तों एवं नियमों पर आधारित होता है।"

(2) **एफ. डब्ल्यू. टेलर** के अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्ध यह जानने की कला है कि आप लोगों से यथार्थ में क्या कराना चाहते हैं तथा यह देखना चाहते हैं कि वे उसको सुन्दर तथा सस्ते ढंग से करें।"

(3) **पीटर एफ. ड्रकर** के अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्ध कार्य का संगठित अध्ययन है, कार्यों के सरलतम भागों का विश्लेषण है तथा कार्य के प्रत्येक भाग में कर्मचारियों के कार्य निष्पादन का विधिवत् सुधार है।"

(4) **लारेन्स ए. एप्पले** के अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्ध अथवा नियोजित प्रबन्ध प्रतिदिन के 'अँगूठे के नियम' एवं 'तीर नहीं तो तुक्का ही सही' के विपरीत प्रबन्ध के उत्तरदायित्वों के निष्पादन का चेतनापूर्ण एवं मानवीय दृष्टिकोण है।"

प्रबन्ध के सिद्धान्त
(Principles of Management)

वैज्ञानिक प्रबन्ध की योजना को सफल बनाने के लिए उसके जन्मदाता **एफ. डब्ल्यू. टेलर** ने वैज्ञानिक प्रबन्ध के निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है—

(1) **विज्ञान, न कि अँगूठा राज्य** (Science, not Rule of Thumb)—इस सिद्धान्त के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध में प्रत्येक कार्य वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण पद्धतियों के आधार पर किया जाता है और अँगूठा राज्य का बहिष्कार किया जाता है। इसके अन्तर्गत विद्यमान परम्परागत तथा रूढ़िवादी पद्धतियों का परीक्षण किया जाता है और यदि वे विज्ञान की कसौटी पर सही उतरती हैं तो उनका उपयोग किया जाता है अन्यथा उनको समाप्त करके उनके स्थान पर नवीन पद्धतियों को विकसित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, वैज्ञानिक प्रबन्ध परम्परा अथवा अन्धविश्वास पर आधारित न होकर विज्ञान पर आधारित है। वैज्ञानिक पद्धति का विकास प्रयोगों द्वारा किया जाता है।

(2) **संगति, न कि असंगति** (Harmony, not Discard)—वैज्ञानिक प्रबन्ध का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि इसके अन्तर्गत संस्था के विभिन्न स्तरों पर पाई जाने वाली असंगतियों अर्थात् मेल न खाने वाली या प्रतिकूल स्थितियों को समाप्त करके उन्हें अनुकूल बनाया जाता है। टेलर असंगतियों को दूर करने के इतने प्रबल समर्थक थे कि उन्होंने मशीनों की एकरूपता के सम्बन्ध में कहा था कि विभिन्न किस्मों, जिनमें अधिकांश उच्च कोटि की कुछ दूसरी कोटि की और कुछ तीसरी कोटि की क्यों न हों, की मशीनें लगाने की अपेक्षा यह कहीं अधिक अच्छा है कि एक ही प्रकार की मशीनें, चाहे वे निम्न कोटि की ही क्यों न हों, लगाई जायें। इससे कार्य परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन करना सरल हो जाता है तथा कार्य निष्पादन के दुर्बल स्थलों का तुरन्त पता लग जाता है। यही कारण है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध में प्रमापीकरण, सरलीकरण, विवेकीकरण तथा विशिष्टीकरण को महत्व दिया जाता है। इससे कच्चे माल, कार्य पद्धतियों, मशीनों तथा अन्य नीतियों में विभिन्नताओं के स्थान पर एकरूपता आती है।

(3) **सहयोग, न कि व्यक्तिवाद** (Co-operation, not Individualism)—वैज्ञानिक प्रबन्ध का तीसरा सिद्धान्त यह है कि इसके अन्तर्गत व्यक्तिवाद के स्थान पर सहयोग की भावना को प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है। यह सहयोग न केवल कर्मचारियों में आपस में ही बल्कि कर्मचारियों और मालिकों में भी हो। टेलर ने कर्मचारियों तथा मालिकों के मध्य सहयोग स्थापित करने के लिए **'मानसिक क्रान्ति'** (Mental Revolution) की आवश्यकता पर बल दिया है। मानसिक क्रान्ति से आशय है कि प्रबन्धक अपना शोषणपूर्ण, पक्षपातपूर्ण एवं अमानवीय व्यवहार छोड़कर श्रमिकों के साथ मानवतापूर्ण एवं शोषण-रहित तथा पक्षपात-रहित व्यवहार करें और उन्हें अधिकाधिक सुविधाएँ देने का प्रयत्न करें। मालिकों को भी यह समझना चाहिए कि श्रमिक भी कारखाने के अनिवार्य अंग हैं, अत: बिना उनके सहयोग के कारखाना चलाना सम्भव नहीं है। यदि मालिक पैसा लगाता है तो श्रमिक अपना श्रम लगाता है। इसी प्रकार श्रमिकों को भी मालिकों के प्रति भ्रममूलक एवं विरोध की भावनाओं को छोड़ देना चाहिए। उन्हें स्पष्ट रूप से यह समझ लेना चाहिए कि मालिक कारखाने का अनिवार्य अंग है। टेलर के अनुसार श्रम तथा पूँजी के घनिष्ठ सम्पर्क एवं सहयोगपूर्ण व्यवहार से ही वैज्ञानिक प्रबन्ध की योजना सफल हो सकती है।

Scanned with CamScanner

(4) **सीमित उत्पादन के स्थान पर अधिकतम उत्पादन** (Maximum Output in Place of Restricted Output)—वैज्ञानिक प्रबन्ध का चौथा सिद्धान्त अधिकतम उत्पादन पर बल देता है। यह सीमित उत्पादन की विचारधारा का विरोधी है। उनके अनुसार जितना अधिक उत्पादन होगा उतना ही अधिक लाभ होगा। जितना अधिक लाभ होगा मालिकों एवं श्रमिकों दोनों को उतना ही अधिक लाभों में से हिस्सा मिलेगा। जब दोनों को भरपूर लाभ मिलेगा तो लाभ के वितरण सम्बन्धी विवाद स्वत: ही समाप्त हो जायेंगे।

(5) **प्रत्येक व्यक्ति का चरम कुशलता एवं सम्पन्नता तक विकास** (The Development of each man to his greatest Efficiency and Prosperity)—वैज्ञानिक प्रबन्ध में प्रत्येक श्रमिक को उसकी अधिकतम कुशलता एवं सम्पन्नता तक पहुँचाने का भरसक प्रयास किया है। इस दृष्टि से श्रमिकों की भर्ती वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर की जाती है। तत्पश्चात् उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इसके पश्चात् कार्य करने की उचित एवं सुविधाजनक परिस्थितियों के अन्तर्गत श्रम-विभाजन के आधार पर समूचे कार्य का बँटवारा किया जाता है। ऐसा हो जाने पर जो व्यक्ति जिस कार्य को करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है, उसे वही कार्य दिया जाता है तथा उन्हें प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति से पारिश्रमिक दिया जाता है। साथ में पदोन्नति के अवसर भी प्रदान किए जाते हैं। ऐसा करने से श्रमिकों में अधिकतम सम्पन्नता आती है। इसका श्रमिकों की उत्पादकता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अर्थात् श्रमिकों की उत्पादकता में भारी वृद्धि होती है। कार्य के प्रति उनमें सन्तुष्टि की भावना जाग्रत होती है।

(6) **नियोजन, न कि तदर्थवाद** (Planning, not adhocism)—वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तिम सिद्धान्त के अनुसार इसके अन्तर्गत कार्य मनमाने ढंग से न कराकर निश्चित योजनाओं, कार्यक्रमों तथा नियमों के आधार पर किया और कराया जाता है।

अथवा

नियन्त्रण प्रक्रिया में कदमों का वर्णन कीजिए।

(Explain the steps in the process of control.)

उत्तर—नियन्त्रण प्रक्रिया सार्वभौमिक है। चाहे किसी भी प्रकार का संगठन या कार्य हो, नियन्त्रण करना आवश्यक तो होता है लेकिन यह कोई आसान कार्य भी नहीं होता। प्रभावी नियन्त्रण हेतु एक निश्चित कदमों वाली प्रक्रिया का उपयोग करना आवश्यक होता है। सामान्य रूप से नियन्त्रण की प्रक्रिया में चार कदम उठाये जाते हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है—

(1) **लक्ष्यों एवं प्रमापों का निर्धारण** (Establishment of Goals and Standards)—नियन्त्रण प्रक्रिया के अन्तर्गत उठाया जाने वाला सबसे पहला कदम लक्ष्यों, प्रमापों, नीतियों, योजनाओं, मान्यताओं अथवा किन्हीं ऐसे प्रमापों का निर्धारण करना है जिनके आधार पर किसी कर्मचारी के कार्य का मापन किया जा सके। ये प्रमाप किसी कार्यकलाप के ऐसे पैमाने का स्तर होते हैं जिनमें वास्तविक कार्य की तुलना की जाती है। कोई भी कार्य सही ढंग से हो रहा है या नहीं, इस बात की जानकारी उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि प्रमापों को निर्धारित नहीं कर दिया जाता है। **कूण्टज एवं ओ' डोनैल** के अनुसार, "प्रमाप निश्चित कसौटी होते हैं जिनके आधार पर वास्तविक कार्य निष्पादन को मापा जा सकता है। ये उपक्रम के विभागों के लक्ष्यों की अभिव्यक्ति को इस प्रकार से प्रदर्शित करते हैं जिससे निर्धारित कर्तव्यों की पूर्ति को इन लक्ष्यों से मापा जा सके।" इस प्रकार प्रमाप वास्तविक निष्पादन के मापन के साधन होते हैं। ये प्रमाप स्पष्ट रूप से निर्धारित किए जाने चाहिए। साथ ही प्रमाप सभी के समझने योग्य एवं सभी को स्वीकार्य होने चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो प्रमाप परिमाणात्मक रूप में होने चाहिए, ताकि उन्हें सरलता से समझा जा सके। परिमाणात्मक प्रमापों का एक लाभ यह भी है कि इससे यह निश्चित करना सुविधाजनक होता है कि विचलन किसी सीमा तक मान्य होंगे।

प्रमापों के निर्धारण के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप में उल्लेखनीय है कि प्रमाप बहुत अधिक ऊँचे अथवा बहुत अधिक नीचे नहीं रखे जाने चाहिए। प्रमापों का निर्धारण उपक्रम के कार्य, स्थिति तथा क्षमता आदि को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए। ये प्रमाप ऐसे हों जिन्हें एक सामान्य व्यक्ति अपने प्रयासों से प्राप्त कर सके।

(2) **वास्तविक निष्पादन का मापन** (Measurement of Actual Performance)—नियन्त्रण प्रक्रिया के अन्तर्गत उठाया जाने वाला दूसरा कदम वास्तविक निष्पादनों का मापन करना है। वास्तविक निष्पादनों के मापन का कार्य निम्न तरीकों से किया जा सकता है—(i) प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अवलोकन एवं निरीक्षण द्वारा (By Direct Personal Observation and Inspection), (ii) नियमित प्रतिवेदनों द्वारा (By Regular Reports), (iii) सर्वेक्षण द्वारा (By Survey), (iv) सांख्यिकीय एवं गणितीय विधियों द्वारा (By Statistical and Mathematical Methods)।

व्यक्तिगत गुणों का मापन व्यक्तिगत अवलोकन द्वारा सरलता से किया जा सकता है। अन्य दशाओं में कार्य का मापन नियमित प्रतिवेदनों एवं सर्वेक्षण द्वारा किया जा सकता है किन्तु इसके लिए यह परम आवश्यक है कि प्रत्येक क्षेत्र के सम्बन्ध में प्रबन्धकों के पास यथासमय सही एवं पूर्ण प्रतिवेदन पहुँचें।

Scanned with CamScanner

(3) **वास्तविक निष्पादनों की प्रमापों से तुलना एवं विचलनों का विश्लेषण** (Comparison of Actual Performances with Standards and Analysis of deviations)—नियन्त्रण प्रक्रिया के अन्तर्गत उठाया जाने वाला तीसरा कदम वास्तविक निष्पादनों की निर्धारित प्रमापों से तुलना करके विचलनों को ज्ञात करना है। **हेनरी फोर्ड** के अनुसार, "एक ही तरह की दो मशीनों का एक ही पुर्जा एक ही तरह का नहीं होता।" अत: विभिन्नता होना प्रकृति का नियम है। देखने की आवश्यकता यह है कि यह विचलन (Daviation) अथवा अन्तर (Difference) कितना है। यह विचलन महत्वहीन हो सकता है, स्वीकृत सीमा के अन्दर हो सकता है अथवा बाहर भी हो सकता है। यदि विचलन स्वीकृत सीमा के अन्दर न हो अर्थात् बाहर हो तो यह प्रमाप का अपवाद (Exception) माना जाता है और उसे पृथक् कर दिया जाना चाहिए। जो अपवाद सामने आए, उनके कारणों की खोज करनी चाहिए। विचलन के कारणों की खोज करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि कारणों की जानकारी के अभाव में सुधारात्मक कदम उठाना कठिन होता है किन्तु विचलन के कारणों को ज्ञात करना एक कठिन कार्य है। इसमें इस तथ्य का पता लगाया जाता है कि गलती आखिर योजना बनाने में की गई है अथवा उस योजना को क्रियान्वित करने में। मूल्यांकनकर्ता को इस सम्बन्ध में निम्न बातों को और ज्ञात करना चाहिए—(i) विचलन का कारण स्थायी है या अस्थायी, बढ़ रहा है या घट रहा है? (ii) विचलन का प्रभाव क्या है? (iii) विचलन का आकार क्या है? (iv) मूल्यांकन के द्वारा प्रभावों में सुधार किस प्रकार किया जा सकता है?

(4) **सुधारात्मक कार्य** (Corrective Action)—यह नियन्त्रण प्रक्रिया के अन्तर्गत उठाया जाने वाला चतुर्थ एवं अन्तिम कदम है। जब वास्तविक कार्यों के निष्पादन और प्रमापों के मध्य विचलन एक सीमा से अधिक हो, तब सुधारात्मक कार्य की प्रवृत्ति न केवल विचलन के सुधार के सम्बन्ध में ही होनी चाहिए वरन् इस प्रवृत्ति की तरफ भी हो कि भविष्य में इस प्रकार के विचलन की पुनरावृत्ति न हो सके। जॉर्ज आर. टैरी के अनुसार, **"सुधार के बिना नियन्त्रण शून्यवत् है और इसकी कोई उपादेयता नहीं है।"** सुधारात्मक कार्य ऐसा हो जिसे सम्पूर्ण उपक्रम को प्रभावित किए बिना ही सम्पन्न किया जा सके अथवा सुधारा जा सके किन्तु यदि वह नियोजन, संगठन, समन्वय तथा अभिप्रेरण आदि प्रबन्ध के कार्यों को प्रभावित करता है तो ऐसी स्थिति में आपसी विचार-विमर्श के पश्चात् ही सुधारात्मक कार्य किया जाना चाहिए।

सुधारात्मक उपाय लागू करने से ही नियन्त्रण प्रक्रिया का अन्त नहीं हो जाता वरन् इसके पश्चात् यह देखना चाहिए कि वे उपाय कितने प्रभावशाली व उपयोगी रहे। इस कारण नियन्त्रण की प्रक्रिया एक सतत् प्रक्रिया जानी जाती है।

29. प्रबन्ध से क्या आशय है ? प्रबन्ध के महत्व का संक्षेप में वर्णन कीजिए। 6

(What is meant by management. Explain its importance in brief.)

उत्तर—प्रबन्ध के इस बढ़ते हुए महत्व का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(1) **न्यूनतम प्रयत्नों द्वारा अधिकतम परिणामों की प्राप्ति के लिए** (To obtain maximum results with minimum efforts)—प्रबन्ध न्यूनतम प्रयत्नों के द्वारा अधिकतम परिणामों की प्राप्ति सम्भव बनाता है। प्रबन्ध निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उत्पादन के विभिन्न साधनों में प्रभावपूर्ण समन्वय स्थापित कर न्यूनतम प्रयासों से अधिकतम परिणामों की प्राप्ति सम्भव बनाता है। प्रबन्ध के महत्व को स्वीकार करते हुए **उर्विक एवं ब्रेच** (Urwick and Brech) ने एक स्थान पर लिखा है कि "कोई भी विचारधारा, कोई भी वाद, कोई भी राजनैतिक सिद्धान्त उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक साधनों के उपयोग से न्यूनतम प्रयत्नों द्वाराअधिकतम उत्पादन की प्राप्ति नहीं करा सकता। यह तो सुदृढ़ प्रबन्ध द्वारा ही सम्भव है और अधिक उत्पादन द्वारा ही व्यक्तियों का जीवन स्तर ऊँचा उठ सकता है, व्यक्तियों का जीवन आरामदायक हो सकता है और व्यक्ति अनेक सुविधायें प्राप्त कर सकते हैं।" वास्तव में प्रबन्ध संस्था के उपलब्ध साधनों में उपयुक्त समन्वय स्थापित कर मनुष्यों का विकास करता है।

(2) **कटु प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए** (To face cut-throat competition)—वर्तमान में उत्पादन केवन स्थानीय, राज्यीय एवं अन्तर्राज्यीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी किया जाता है। अत: जैसे-जैसे उत्पादन के पैमाने में वृद्धि हो रही है और बाजारों का विकास हो रहा है त्यों-त्यों प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है। इस गलाकाट प्रतिस्पर्धा के युग में वही उद्योगपति टिक पाता है जो न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करने में सफल हो पाता है। इस स्थिति से प्रबन्ध ही उसको बाहर निकाल सकता है। अच्छे एवं कुशल प्रबन्ध में दूरदर्शिता, योजनाओं के निर्माण की क्षमता, क्रियाओं के निर्धारण की क्षमता, सामूहिक प्रयासों में समन्वय स्थापित करने की क्षमता, देश की आर्थिक स्थिति का सही मूल्यांकन करने की क्षमता, ग्राहकों की रुचि का अध्ययन करने की क्षमता आदि होती है।

(3) **निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना** (To obtain pre-determined targets)—प्रबन्ध अपने विशिष्ट ज्ञान व अनुभव के आधार पर भावी घटनाओं का अनुमान लगाकर नियोजन करते हैं एवं संगठन की संरचना करके विभिन्न क्रियाओं में समन्वय स्थापित करते हैं और इस प्रकार उपक्रम के पूर्व-निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करते हैं। कुशल प्रबन्ध के अभाव में किसी भी उपक्रम के पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

Scanned with CamScanner

(4) **तकनीकी एवं वैज्ञानिक अनुसन्धान का लाभ उठाना** (To get advantage of technical and scientific research)—वैज्ञानिक एवं तकनीकी सुधारों से जहाँ एक ओर भीमकाय उत्पादन सम्भव हुआ है वहाँ दूसरी ओर उत्पादन की विधियों में भी आमूल-चूल परिवर्तन हुआ है जो काम पहले हाथ से किया जाता था उसे अब स्वचालित मशीनें करती हैं। विज्ञान एवं तकनीकी विकास ने जहाँ एक ओर कार्य विधियों को सरल किया है वहाँ दूसरी ओर अनेकों समस्याओं को जन्म भी दिया है। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी परिवर्तनों को लागू करने के लिए योग्य एवं अनुभवी प्रबन्ध की आवश्यकता रहती है। कुशल प्रबन्ध द्वारा ही इन्हें लागू किया जा सकता है।

(5) **उद्देश्यों का निर्धारण करने के लिए** (To determine objectives)—प्रत्येक संस्था की स्थापना कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती है। इन विशेष उद्देश्यों का निर्धारण करना प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। कुशल प्रबन्ध परिस्थितियों एवं नियमों के अनुसार संस्था के विभिन्न उद्देश्यों तथा आर्थिक, सामाजिक एवं मानवीय आदि का निर्धारण करते हैं। स्पष्ट है कि प्रत्येक संस्था के उद्देश्यों के निर्धारण में प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(6) **नीतियों का निर्धारण करने के लिए** (To determine policies)—किसी संस्था के उद्देश्यों का निर्धारण करना जितना जरूरी है उससे कहीं अधिक जरूरी इनकी प्राप्ति हेतु सुदृढ़ नीतियों का निर्धारण करना है। नीतियाँ निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु महत्त्वपूर्ण साधन होती हैं। संस्था की नीतियों के निर्धारण हेतु कुशल प्रबन्ध की आवश्यकता होती है। प्रबन्ध द्वारा प्रारम्भ में आधारभूत नीतियों का निर्माण किया जाता है और बाद में जरूरत के अनुसार विभिन्न नीतियों का निर्धारण किया जाता है।

(7) **श्रमिकों की समस्याओं का समाधान करना** (To solve the labour problems)—आधुनिक वृहत् उत्पादन प्रणाली ने श्रमिकों की अनेकों समस्याओं को जन्म दिया है। पहले अधिकांश उद्योगपति श्रमिकों को उनके द्वारा किये गये कार्य के बदले उतना पारिश्रमिक देते थे जिससे उनकी रोटी की समस्या हल हो सके परन्तु वर्तमान में ऐसा नहीं है। आज प्रबन्ध और स्वामित्व में अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो गई है। श्रमिकों का उद्योग में उत्पादन के अन्य घटकों की तुलना में सर्वाधिक महत्व है। अब उन्हें उत्पादन का एक महत्वपूर्ण घटक और सक्रिय अंग माना जाने लगा है। अत: इनके हितों की रक्षा करना, इनकी समस्याओं का समाधान करना एवं अच्छे श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धों की स्थापना करना प्रबन्ध के सामने एक चुनौती है। इस चुनौती का सामना कुशल प्रबन्ध ही कर सकता है। ये अपने ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर श्रम समस्याओं का उचित समाधान करते हैं, इनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करते हैं, पदोन्नति के अवसर प्रदान करते हैं, वित्तीय एवं अवित्तीय प्रेरणाएँ उपलब्ध कराते हैं, प्रबन्ध में भागीदार एवं लाभों में उचित हिस्सा देते हैं एवं उनकी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को गिरने नहीं देते हैं।

(8) **सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करना** (To fulfil social responsibilities)—प्रबन्ध का कार्य व उत्तरदायित्व केवल व्यवसाय अथवा उद्योग के संचालन तक ही सीमित नहीं, अपितु समाज के प्रति भी है। उसे समाज के प्रति अपने अनेक सामाजिक उत्तरदायित्वों को निभाना पड़ता है। सामाजिक उत्तरदायित्व में स्वामियों की पूँजी की सुरक्षा तथा उन्हें उनकी पूँजी पर उचित लाभ उपलब्ध कराना, उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना, कर्मचारियों को कार्य की उचित दशायें तथा उचित पारिश्रमिक उपलब्ध कराना, उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुएँ उपलब्ध कराना, समाज को रोजगार के उचित अवसर प्रदान करना आदि आता है। इन सभी कार्यों को पूरा करने के लिये सुयोग्य प्रबन्ध की आवश्यकता रहती है।

(9) **व्यक्तियों के विकास के लिए** (For development of people)—प्रबन्ध व्यक्तियों की कार्यकुशलता में वृद्धि करता है और उनका सर्वांगीण विकास करता है। **लॉरेन्स ए. एप्पले** ने ठीक ही कहा है, ''प्रबन्ध व्यक्तियों का विकास है, न कि वस्तुओं का निर्देशन......।'' वास्तव में प्रबन्ध की समस्त क्रियाएँ मानवीय विकास से सम्बन्धित होती हैं। कुशल प्रबन्ध निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति और व्यक्तियों का विकास करने के लिए लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं, इनकी प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं, कर्मचारियों की भर्ती एवं उनके प्रशिक्षण इत्यादि की व्यवस्था करते हैं, उनका निर्धारित लक्ष्य की ओर मार्ग प्रशस्त करते हैं, उन्हें प्रबन्ध में एवं लाभ में हिस्सा प्रदान करते हैं और उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाते हैं। अत: हम कह सकते हैं कि व्यक्तियों के विकास में प्रबन्ध का अत्यन्त महत्व है।

(10) **सामाजिक स्थिरता बनाये रखने के लिए** (To establish social stability)—वर्तमान समय में प्रबन्ध के क्षेत्र में नवीन विचारधाराओं, तकनीकों, मान्यताओं एवं सिद्धान्तों का विकास हो रहा है। कुशल प्रबन्ध इन परिवर्तनों, विचारधाराओं आदि को अपनाते हैं जिनसे व्यवसाय जगत में स्थिरता बनी रहती है। **पॉल पिगर्स** (Paul Pigours) ने ठीक ही कहा है, ''प्रबन्धक समाज को स्थिरता प्रदान करने वाला तथा परम्पराओं का संरक्षक है।''

(11) **व्यवसाय में महत्व** (Importance in business)—**पीटर एफ. ड्रकर** ने ठीक ही कहा है, ''प्रबन्धक प्रत्येक व्यवसाय का गतिशील एवं जीवनदायक तत्व होता है उसके नेतृत्व के अभाव में उत्पादन के साधन केवल साधन-मात्र ही रह जाते हैं, कभी उत्पादन नहीं बन पाते।'' अर्थात् प्रबन्ध के अभाव में उत्पादन के साधन भूमि, श्रम व पूँजी निष्क्रिय तथा व्यर्थ हैं और यही कारण है कि व्यवसाय में प्रबन्ध का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। वास्तव में प्रबन्ध उद्योग अथवा व्यवसाय की जीवनदायिनी शक्ति है।

Scanned with CamScanner

(12) **उत्पादन के विभिन्न साधनों में समन्वय स्थापित करने के लिए** (To co-ordinate different factors of production)—उत्पादन के विभिन्न साधन जैसे— भूमि, श्रम, पूँजी, सामग्री एवं कच्चे माल का कुशल चयन, व्यवस्था तथा समन्वय करके ही कुशल उत्पादन की प्राप्ति की जा सकती है। उत्पादन के विभिन्न साधनों में पारस्परिक समन्वय प्रबन्ध के द्वारा ही किया जाता है। बिना समन्वय के सफल उत्पादन की आकांक्षा करना ही व्यर्थ है।

(13) **गैर-व्यवसायी संस्थाओं में प्रबन्ध** (Management in non-trading organizations)—प्रबन्ध की आवश्यकता केवल व्यावसायिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु गैर-व्यावसायिक क्षेत्र जैसे—स्कूल, कॉलेज, धार्मिक एवं राजनैतिक संस्थाओं, सामाजिक कार्यों, यहाँ तक कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जैसे धर, खेल का मैदान आदि में भी रहती है। प्रसिद्ध विद्वान **हेनरी फेयोल** ने ठीक ही कहा है, ''प्रतिष्ठानों के शासन में प्रबन्ध का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी आवश्यकता बड़े या छोटे औद्योगिक, व्यावसायिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं अन्य सभी प्रतिष्ठानों में है।''

(14) **देश की समृद्धि के लिए** (For country's development)—कुशल प्रबन्धक जब न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन सम्भव बनाते हैं, उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग करते हैं, श्रम समस्याओं को सुलझाते हैं, कर्मचारियों के साथ मानवोचित व्यवहार करते हैं एवं समाज के विभिन्न अंगों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भली-भाँति निभाते हैं तो निश्चित ही राष्ट्र समृद्धि की ओर अग्रसर होता है। विश्व के अनेक राष्ट्रों ने अल्पावधि में जो प्रगति की है वह इसका उदाहरण है।

अथवा

टेलर और फेयोल के सिद्धान्त में जो समानताएँ हैं, उन्हें स्पष्ट कीजिए।

(Explain the similarities in the principle propounded by Taylor and Fayol.)

उत्तर—

क्र. सं. (S. No.)	अन्तर का आधार (Basis of Difference)	फेयोल का योगदान (Contribution of Fayol)	टेलर का योगदान (Contribution of Taylor)
1.	**अर्थ** (Meaning)	"प्रबन्ध का अर्थ है पूर्वानुमान एवं योजना संगठन, निर्देशन, समन्वय एवं नियन्त्रण" "To manage is to forecast and plan, to organise, to command, to co-ordinate and to control." उपरोक्त परिभाषा में फेयोल ने प्रबन्ध को कार्यों के आधार पर परिभाषित किया है।	प्रबन्ध का अर्थ यह जानना है कि आप अपने कर्मचारियों से क्या कराना चाहते हैं और यह देखना कि वे इसे कम से कम व्यय में सबसे अच्छा करते हैं। "Knowing exactly what you want men to do and seeing that they do it in the best and cheapest way." टेलर ने कर्मचारियों द्वारा कम व्यय में सर्वोत्तम काम लेने पर विशेष बल दिया।
2.	**मूल्यांकन** (Valuation)	फेयोल स्वयं प्रबन्धक थे अतः उन्होंने प्रबन्ध की व्यवस्था को तर्कपूर्ण ढंग पर सुधारने का प्रयत्न किया। उन्हें समस्याओं का पता था अतः उन्हें सुधारने का यत्न उन्होंने किया।	टेलर स्वयं श्रमिक भी रहे। अतः श्रमिकों की समस्या, वेतन, कार्य की मात्रा, कार्य करने के ढंग पर वैज्ञानिक रीति से उन्होंने उसका विश्लेषण और व्यवस्था की।
3.	**वर्तमान स्थिति** (Present Position)	फेयोल के सिद्धान्त आज भी उतने ही अटल हैं जितने कि उस समय जब इनका प्रतिपादन हुआ था।	वर्तमान परिस्थितियों में टेलर के सिद्धान्तों में भी काफी परिवर्तन हो चुका है।
4.	**योगदान** (Contribution)	व्यापार को छः व्यावसायिक क्रियाओं में बाँटा है। प्रबन्ध के पाँच कार्य बतलाए हैं तथा चौदह प्रबन्ध के सिद्धान्तों का वर्णन किया है।	टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध का विश्लेषण पाँच वैज्ञानिक तकनीकों के आधार पर किया है—(1) कार्य अध्ययन, (2) कार्य की वैज्ञानिक योजना, (3) कर्मचारियों का वैज्ञानिक चुनाव, (4) प्रमापीकरण एवं (5) मानसिक क्रान्ति।

Scanned with CamScanner

5.	आलोचनाएँ (Criticism)	यह बहुत औपचारिक है इसने प्रबन्ध को जटिल बना दिया है। दूसरे इसमें कर्मचारियों की तरफ ध्यान कम दिया गया है। इन्होंने कर्मचारियों को उचित वेतन की बात भी नहीं कही है।	इसमें कर्मचारियों के शोषण का भय रहता है। कार्य को नीरस बना देता है। रोजगार के अवसरों में भी कमी करता है। यह प्रबन्धकों को अधिक लाभ पहुँचाता है। इस व्यवस्था में कर्मचारियों को विशेष महत्व नहीं दिया गया है। यद्यपि इन्होंने उचित पारिश्रमिक की बात कही है।

उर्विक ने फेयोल और टेलर के सिद्धान्तों को एक-दूसरे का पूरक माना है क्योंकि उनके विचार से दोनों विद्वान इस विषय पर एक मत थे कि प्रबन्ध के सभी स्तरों पर कर्मचारी एवं उनकी समस्याएँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। इस सम्बन्ध में **थियो हेमैन** (Theo Haimann) का विचार भी कम उल्लेखनीय नहीं है कि "जब हम टेलर को वैज्ञानिक प्रबन्ध का जन्मदाता मानते हैं तो हमें फेयोल के साथ न्याय करने के लिए उसे प्रबन्ध के सिद्धान्तों का जन्मदाता मानना चाहिए।" यह भी सत्य है कि आधुनिक परिवर्तनों के कारण टेलर की विचारधारा में बहुत परिवर्तन हो गया है जबकि फेयोल के सिद्धान्त आज भी अटल हैं।

टेलर व फेयोल में समानता (Similarity between Taylor and Fayol)—टेलर तथा फेयोल दोनों ही उच्च श्रेणी के प्रबन्ध विशेषज्ञ थे अत: उनके कार्यों में पर्याप्त समानताएँ विद्यमान हैं जो कि निम्न हैं—

(1) टेलर तथा फेयोल दोनों ही प्रबन्ध की दशाओं को सुधारना चाहते थे। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दोनों ने ही कार्य किया।

(2) दोनों ही प्रबन्ध को विवेकपूर्ण तथा व्यवस्थित आधार प्रदान करना चाहते थे। इसके लिए टेलर ने 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' का आधार प्रदान किया तथा फेयोल ने 'प्रशासन के सामान्य सिद्धान्त' का उद्‌गम एवं विकास किया। प्रबन्ध का आधुनिक विज्ञान दोनों से ही प्रेरणा लेता है।

30. क्रियात्मक संगठन से क्या आशय है ? इसके गुण-दोषों का वर्णन करें। 6

(What is meant by functional organisation ? Explain its merits and demerits.)

उत्तर—(I) क्रियात्मक अथवा कार्यात्मक संगठन संरचना (Functional Organisation Structure)

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)— क्रियात्मक शब्द की उत्पत्ति इस विचारधारा से हुई है कि प्रत्येक संगठन को किसी व्यवसाय को चलाने के लिए कुछ कार्य अथवा क्रियाएँ सम्पन्न करनी पड़ती हैं। अतएव यह स्वाभाविक ही है कि किसी संगठन की क्रियाओं का प्रारम्भ उस कार्य पर बल देकर होता है जिसके करने से संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। जैसे-जैसे किसी संगठन का आकार बढ़ता जाता है वैसे-वैसे उसकी क्रियाओं का भी विशिष्टीकरण होता जाता है अन्तत: क्रियात्मक संगठन के अन्तर्गत कार्यों के आधार पर समान क्रियाओं का समूहीकरण किया जाता है। अतएव क्रियात्मक संगठन से आशय कार्यों के आधार पर समान क्रियाओं का समूहीकरण करने से है।

एल. के. जॉनसन (L. K. Johnson) के अनुसार, "क्रियात्मक संगठन वह संगठनात्मक व्यवस्था है जिसमें अधिकार की रेखाएँ कई क्रियात्मक विशेषज्ञों के मध्य से होती हुई प्रत्येक श्रमिक तक पहुँचती हैं, अधिकार का प्रत्येक स्तर योजना एवं अपने अधीनस्थों के सम्पूर्ण नहीं बल्कि कुछ कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है।"

एफ. डब्ल्यू टेलर (F.W. Taylor) के अनुसार, "क्रियात्मक संगठन का अर्थ संगठन के इस प्रकार विभाजन से है जिसके सहायक अधीक्षक से लेकर नीचे तक के व्यक्तियों को इतने कम कार्य दिये जायें जितने वे आसानी से पूरे कर सकें। यदि सम्भव हो सके तो संगठन के प्रत्येक व्यक्ति को केवल एक ही महत्वपूर्ण कार्य दिया जाना चाहिए।"

कूण्ट्ज एवं ओ' डोनैल (Koontz and O'Donnell) के शब्दों में, "क्रियात्मक संगठन अधिकारी एवं प्रबन्धक की विशिष्ट प्रक्रियाओं, नीतियों या मामलों पर अधिकार है जो अन्य विभाग के कर्मचारियों के कार्य करने से सम्बन्धित है।"

क्रियात्मक संगठन और टेलर (Functional Organisation and Taylor)—क्रियात्मक संगठन पद्धति **श्री एफ. डब्ल्यू. टेलर** की देन है। इस पद्धति का विकास टेलर ने प्रबन्ध में विशिष्टीकरण करने के प्रयासों के अन्तर्गत किया है। उनका यह मत था कि एक व्यक्ति समस्त कार्यों का विशेषज्ञ नहीं हो सकता। अत: कार्यरत कर्मचारियों को वही कार्य दिया जाना चाहिए जिसमें वे दक्ष हों। **श्री टेलर** के अनुसार, "इस पद्धति में प्रबन्ध का नियन्त्रण इस प्रकार होता है कि जिससे प्रत्येक व्यक्ति को कम कार्य करना पड़े। अत: उसका कार्य यथासम्भव छोटी से छोटी प्रक्रिया (Process) में विभाजित कर दिया जाता है जिससे इस क्रिया तक उसका कार्य-क्षेत्र सीमित रहता है। इस प्रकार के क्रिया-विभाजन से एक व्यक्ति का सम्बन्ध केवल एक ही अधिकारी तक रहता है जो आवश्यक आदेश अथवा सूचनाएँ देता है।" इस प्रकार इस प्रणाली में प्रत्येक छोटे-से-छोटे कार्य के लिए भी एक निरीक्षक (विशेषज्ञ) नियुक्त किया जाता है जो कि अपने कार्य की पूर्ण रूप से निगरानी रखता है। इस व्यक्ति को इस कार्य से सम्बन्धित प्राय: सभी अधिकार प्राप्त रहते हैं। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति जो माल की किस्म का विशेषज्ञ है इस बात की जाँच

Scanned with CamScanner

करता रहेगा कि माल ठीक किस्म का बन रहा है अथवा नहीं; उसे अन्य बातों से कोई सरोकार नहीं है। प्रबन्ध विशिष्टीकरण के आधार पर टेलर ने आठ विशेषज्ञों की कल्पना की है जो किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आदेश-निर्देश देते हैं। उनके द्वारा निर्धारित चार विशेषज्ञ कार्यालय सम्बन्धी कार्यों से जुड़े रहते हैं तथा शेष चार विशेषज्ञ कारखाने से जुड़े रहते हैं। कार्यालय विशेषज्ञों का कार्य नियोजन करना है तथा कारखाना विशेषज्ञ उत्पादन कार्यों में संलग्न रहते हैं।

क्रियात्मक संगठन के उद्देश्य (Objects)—क्रियात्मक संगठन का प्रतिपादन निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया गया है—

(1) विशिष्टीकरण के सिद्धान्त का पालन करने के लिए,

(2) विभिन्न योग्यता वाले व्यक्तियों की सेवाओं का लाभ उठाने के लिए,

(3) संगठनात्मक सन्तुलन स्थापित करने के लिए, तथा

(4) संगठन में पर्याप्त लोच लाने के लिए।

लाभ या गुण (Advantages or Merits)—(1) विशिष्टीकरण पर आधारित होने के कारण **दक्षता में वृद्धि होती है।** (2) विशेषज्ञों की नियुक्ति के कारण **अनुसन्धान के कार्य को प्रोत्साहन** मिलता है। (3) यह बड़ी मात्रा में उत्पादन प्रोत्साहित करता है। (4) श्रमिकों को इस पद्धति से लाभ होते हैं क्योंकि **कार्य का विभाजन योग्यतानुसार** होता है। (5) **भविष्य में उपक्रम का आकार बिना महत्वपूर्ण परिवर्तन** किये बढ़ाया जा सकता है। (6) **सहयोग की भावना** को प्रोत्साहन मिलता है। (7) **मानसिक तथा शारीरिक कार्यों में भेद** किया जाता है। (8) **यह पद्धति** प्रेरणात्मक है। (9) **यह अविभाजित दायित्व और नियन्त्रण के सिद्धान्त को सम्भव बनाती है।**

हानियाँ या दोष (Disadvantages or Demerits)—(1) एक ही कार्य पर कई अधिकारी होने के कारण **उत्तरदायित्व का अभाव** रहता है। (2) **अनुशासन पर** अपेक्षाकृत **कम बल** दिया जाता है। (3) यह प्रणाली छोटे उद्योगों के लिए अनार्थिक है। (4) विशेषज्ञों की संख्या अधिक हो जाने से अधिकारों के लिए आपस में प्रतिद्वन्द्विता प्रारम्भ हो जाती है जिसका प्रभाव कर्मचारियों पर बुरा पड़ता है। (5) **कागजी कार्य में अनावश्यक** रूप में वृद्धि होती है। छोटे-से-छोटे कार्य के सम्बन्ध में भी सूचनाएँ तथा आदेश निर्गमित करने पड़ते हैं। (6) इसमें **समन्वय में कठिनाई** होती है, क्योंकि कार्यों को अनेक भागों के उप-भागों में विभाजित किया जाता है। (7) संगठन का यह प्रारूप **केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति** को प्रोत्साहन देता है। (8) यह **प्रबन्ध को लोचहीन** बना देता है। (9) यह संगठन प्रबन्ध का एक प्रमुख सिद्धान्त **'आदेश की एकता' का उल्लंघन** करता है। (10) निष्पादन का मूल्यांकन कठिन हो जाता है।

अथवा

सन्देशवाहन का महत्व स्पष्ट करें।

(Clarify the Importance of Communication.)

उत्तर—सन्देशवाहन आधुनिक व्यवसाय एवं प्रबन्ध की आधारशिला तथा जीवन-शक्ति है। व्यवसाय अब स्थानीय तथा राष्ट्रीय परिधि को लाँघकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पहुँच चुका है। जटिल विधियाँ, विशिष्टीकरण एवं तीव्र प्रतिस्पर्द्धा आधुनिक व्यवसाय के मुख्य तत्व बन गये हैं। इन परिस्थितियों में सुव्यवस्थित सन्देशवाहन पद्धति व्यवसाय संचालन को सरल बनाने में सहायक होती हैं। किसी भी व्यवसाय को सुव्यस्थित रूप से चलाने तथा इसके विभिन्न अंगों के मध्य समन्वय बनाये रखने के लिए सुनियोजित सन्देशवाहन प्रणाली अत्यन्त आवश्यक है। निरन्तर सन्देशवाहन के अभाव में आज के युग में व्यावसायिक प्रगति की कल्पना करना भूल मात्र होगा। प्रभावी सन्देशवाहन का महत्व निम्नांकित बातों से स्पष्ट हो जाता है—

(1) **व्यवसाय की सुव्यवस्थित कार्यविधि** (Organised Business Procedure)—प्राचीनकाल में जब व्यापार का सामान्यत: एकल स्वरूप था और वृहतस्तरीय उत्पादन तथा वितरण की जटिलताओं ने व्यावसायिक जगत में प्रशासनिक एवं व्यावहारिक समस्याएँ इतनी बड़ी मात्रा में उपस्थित नहीं की थीं, सन्देशवाहन का महत्व अधिक नहीं था किन्तु आधुनिक युग जटिलताओं का युग है। प्रत्येक कार्य की निर्दिष्ट विधि होती है। इस विधि का पालन करना बड़ा आवश्यक है अन्यथा कार्य-संचालन एवं व्यवस्था में दिन-प्रतिदिन बाधाएँ उपस्थित होंगी। सुव्यवस्थित कार्य-संचालन के लिए व्यवसाय के प्रत्येक अंग के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध आवश्यक है जिससे कि उनके बीच निरन्तर निर्बाध गति से सन्देशवाहन का कार्यक्रम चलता रहता है। जब कोई व्यक्ति किसी विभागीय भण्डार में अपनी आवश्यकता की कुछ वस्तुएँ क्रय करने जाता है तो उसके विभाग में घुसकर काउण्टर पर पहुँचते ही सन्देशवाहन का कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता है। उसके द्वारा भावों की पूछताछ करना, विक्रेता द्वारा भाव बताना, क्रेता द्वारा आदेश देना, विक्रेता द्वारा आदेश प्राप्त कर वस्तुओं को एकत्रित करना तथा इन्हें पैकिंग के लिए सुपुर्द कर देना, माल का बीजक बनाना तथा माल का पैकेट सुपुर्द करना अथवा ग्राहक के आदेशानुसार इस माल की घर पर सुपुर्दगी करना—इन सभी कार्यों में निरन्तर सन्देशवाहन का प्रयोगात्मक रूप ही तो दृष्टिगत होता है। सन्देशवाहन प्रणाली जितनी सुगम होगी, उतना ही अधिक व्यवसाय की सफलता की हम आशा कर सकते हैं।

Scanned with CamScanner

(2) **न्यूनतम लागत पर अधिकाधिक उत्पादन** (Maximum Production at the Lowest Cost)—प्रत्येक उत्पादक तथा व्यवसायी कम से कम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन करना चाहता है। वस्तुत: आज के इस प्रतिस्पर्द्धा के युग में वही व्यवसायी सफल हो सकता है जो कम से कम व्यय पर अधिकतम उत्पादन कर सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन तन्त्र निरन्तर चलता रहे, न तालाबन्दी हो और न श्रमिकों की ओर से हड़तालें। इसके लिए नियोक्ता, प्रबन्धकों और श्रमिकों के बीच सौहार्दपूर्ण मधुर सम्बन्धों का होना परमावश्यक है। एक सुन्दर सुव्यवस्थित सन्देशवाहन प्रणाली प्रबन्धकों और श्रमिकों के मध्य सतत् वार्तालाप तथा विचारों के आदान-प्रदान का अवसर उपलब्ध कराती है।

(3) **शीघ्र निर्णय एवं क्रियान्वयन** (Quick Decision and its Enforcement)—आधुनिक व्यवसाय लघुस्तरीय एकाकी स्वामित्व का न रहकर वृहत् स्तरीय बहु-स्वामित्व वाला हो गया है। यदि स्वामित्व का स्वरूप साझेदारी फर्म है तो साझेदारों के मध्य और यदि व्यवसाय के स्वामित्व का स्वरूप कोई कम्पनी है तो सदस्यों के चुने हुए प्रतिनिधियों के बीच, जिन्हें संचालक कहते हैं, विचार-विमर्श होना आवश्यक है। कभी-कभी तो इस विचार-विमर्श में कर्मचारियों का सहयोग भी प्राप्त करना होता है। एक सुव्यवस्थित सन्देशवाहन पद्धति के अपनाने पर विचार-विमर्श शीघ्रगामी तथा सुगम हो जाता है। इससे समस्याओं के तुरन्त समाधान में सहायता मिलती है और निर्णय शीघ्र होकर उस पर क्रियान्वयन तुरन्त किया जा सकता है।

(4) **विभिन्न विभागों में समन्वय** (Co-ordination between Department)—कार्य का विभाजन आधुनिक भीमकाय उत्पादन का आधारभूत स्तम्भ है। विभिन्न व्यक्तियों की क्रियाओं एवं विभागों के मध्य प्रभावी समन्वय का होना आवश्यक है। तभी निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव है। यह कार्य सुनियोजित सन्देशवाहन प्रणाली द्वारा ही सम्भव है।

(5) **जन-तान्त्रिक भावना को बल** (Incentive to Democratic Feelings)—व्यवसाय की प्रबन्ध व्यवस्था के लिए प्रबन्धक तथा संचालकगण तो होते ही हैं किन्तु वास्तविक कार्य अधीनस्थ कर्मचारी को ही करना होता है। इन कर्मचारियों की व्यावसायिक क्रियाओं सम्बन्धी सुझाव व्यावसायिक सफलता में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। ऐसी दशा में उपयुक्त सुझावों के लिए कर्मचारियों को पुरस्कृत भी किया जाता है। प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों के बीच इस परामर्श प्रणाली के कारण कर्मचारी भी गौरवान्वित अनुभव करते हैं और वे यह समझते हैं कि व्यवसाय का प्रबन्ध जनतान्त्रिक आधार पर चलाया जा रहा है जिसमें उनका भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस भावना के बल मिलने पर प्रबन्ध एवं श्रमिकों में सम्बन्ध बिगड़ने का तनिक भी भय नहीं रहता जो स्वयं व्यवसाय के हित में है। वस्तुत: **"प्रबन्ध द्विमार्गीय यातायात के समान है और यह सम्प्रेषण की प्रभावी व्यवस्था पर आधारित है।"**

(6) **प्रबन्धकीय क्षमता का संवर्द्धन** (Promotion of Managerial Efficiency)—प्रबन्ध में व्यक्तियों से व्यवहार किया जाता है। सन्देशवाहन के माध्यम से व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विचार सुनता है, समझता है तथा उसके अनुकूल कार्य करता है। यदि व्यवसाय में प्रभावी सन्देशवाहन की व्यवस्था न हो तो प्रबन्ध निष्क्रिय एवं असहाय हो जाएगा। इसके विपरीत, प्रभावी सन्देशवाहन प्रबन्धकीय क्षमता को दिन-दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ाता है। यह तो एक आम बात है कि जब हम अपने अधिकारी की बात अच्छी तरह से सुन नहीं सकते एवं समझ नहीं सकते तो फिर उस पर अमल करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। **जॉर्ज आर. टैरी** के शब्दों में, "सन्देशवाहन प्रबन्धकीय प्रक्रिया के सुविधाजनक प्रचलन में तेल का कार्य करता है।"

(7) **पद-सन्तुष्टि** (Job-satisfaction)—सन्देशवाहन के माध्यम से प्रबन्ध तथा कर्मचारियों के मध्य पारस्परिक विश्वास की भावना को बढ़ाया जा सकता है क्योंकि सन्देशवाहन ही एकमात्र ऐसा साधन है जिसके माध्यम से यह पता लगता है कि प्रबन्ध क्या चाहता है तथा कर्मचारियों को क्या करना है? जब दोनों के मध्य किसी प्रकार की गलतफहमी उत्पन्न होने की सम्भावना न हो तो इससे सभी को अपने कार्य में सन्तुष्टि प्राप्त होती है। संक्षेप में, प्रभावी सन्देशवाहन व्यक्तियों को सन्तोष प्रदान करता है, मानव की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और उनमें अपने पद के प्रति विश्वास एवं उत्साह उत्पन्न होता है।

(8) **नेतृत्व क्रिया का आधार** (Basis of Leadership Action)—नेता और उसके अनुयायियों के मध्य बिना सन्देशवाहन के नेतृत्व की क्रिया का होना असम्भव है। अपने विचारों, भावनाओं, सुझावों तथा निर्णयों को नेता अपने अनुयायियों तक प्रभावी सन्देशवाहन के माध्यम से ही प्रसारित करके अपने प्रभाव का उपयोग कर सकता है। अनुयायी भी अपने प्रत्युत्तरों, अनुभवों, प्रवृत्तियों तथा समस्याओं को अपने नेता तक सन्देशवाहन के माध्यम से पहुँचा सकते हैं। इस प्रकार प्रभावी एवं स्पष्ट सन्देशवाहन ही नेतृत्व को प्रभावशाली बना सकता है।

(9) **सन्देहों, भ्रमों एवं अज्ञानताओं के निवारण के लिए** (To Eradicate Suspecion, Misunderstanding and Ignorance)—सन्देह एवं भ्रम सभी आपसी सम्बन्धों के विनाश की जड़ हैं। अज्ञानता मानव का सबसे बड़ा शत्रु है। सन्देशवाहन इन सभी विनाशकारी तत्वों एवं शत्रुओं का नाश कर सकता है। यथासमय सही सूचनाओं तथा तथ्यों के आदान-प्रदान से सन्देह एवं भ्रम दूर किये जा सकते हैं। इन्हीं से ज्ञान या जानकारी का भी संचार किया जा सकता है। **डब्ल्यू. एच. व्हाइट** के अनुसार, "भ्रम सन्देशवाहन का सबसे बड़ा शत्रु है।"

Scanned with CamScanner